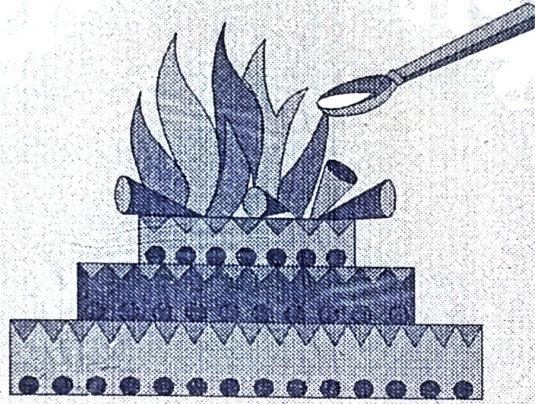


कुण्डमण्डपसिद्धिः

स्व. पं. श्री वायुनन्दनमिश्रेण

भाषाटीकासहिता



प्रकाशक :

मास्टरखेलाड़ीलाल संकटाप्रसाद

संस्कृत पुस्तकालय

कचौड़ीगली, वाराणसी - 1

मूल्य : 25.00

श्रीविठ्ठलदीक्षितविरचिता

कुण्डमण्डपसिद्धिः

भाषाटीकासहिता

टीकाकारः

पं० श्रीवायुनन्दनमिश्रः

प्रकाशक

मास्टर खेलाडीलाल संकटाप्रसाद

संस्कृत पुस्तकालय

कचौड़ीगली, वाराणसी-१



कर्मकाण्ड आचार्य पं. वायुनन्दन मिश्र

भूमिका

अब तक कर्मकाण्ड के विविध ग्रन्थों के रहते हुए भी कोई ऐसा ग्रन्थ नहीं था कि जिससे यज्ञ-यागादि में कुण्ड और मण्डपरचना की प्रक्रिया यथावत् ज्ञान हो सके । था भी तो अनेक बड़े-बड़े ग्रन्थों में कि जहाँ से खोज कर निकालना सर्वसाधारण के लिए दुस्तर था । मैं भी इसी विचार में पड़ा था कि यह कार्य कैसे सम्पन्न हो, इसी बीच श्री विठ्ठलदीक्षित-रचित कुण्डमण्डप-सिद्धि की यह हस्तलिखित प्रति हाथ लग गयी । इसमें भी एक कमी थी, वह यह कि सीधे-सादे कुछ पद्यों में सूत्र रूप से कुण्डमण्डप-रचना की पद्धति समाविष्ट थी । इसी को आधार मान कर मैंने इसकी टीका की, उदाहरण लिख दिये और आवश्यक कुण्डों का चित्र भी लगा कर मैंने जिस-किसी तरह यह समस्या सुलझायी ।

यह रचना कैसी है । इसमें लोगों का कितना लाभ होगा । यह विचारना मेरा काम नहीं है । इसका विचार तो वे महानुभाव ही करेंगे, जो इस विषय के जिज्ञासु हैं । विशेष क्या लिखूँ ।

इत्यलम् ।

विषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ पं०	विषय	पृष्ठ पं०
मंगलाचरण	१-३	पंचकुंडीचक्रम्	१३-२
हस्तादिमान	२-१५	नवकुंडीफलम्	१७-१
पृथिवी परीक्षा	३-१०	हवनसंख्यया हस्तमानम्	१७-१६
पूर्वपश्चिमसाधन	४-४	हस्तादि का मान	१८-१७
दक्षिणोत्तर साधन	५-१	हस्तादिक क्षेत्रफलस्य चक्रम्	१९-२०
रात्रि में पूर्व पश्चिम का साधन	५-११	सूक्ष्मभुजमानचक्रम्	२०-१
दूसरे प्रकार से उत्तर दक्षिण		कुंडों के योनि का स्थान	२०-२
का साधन	५-२३	चतुरस्रकुंड का साधन	२०-१५
चतुष्कोण साधन	६-११	योनिकुंड साधन	२१-९
मंडप की ऊँचाई	६-२०	अर्धचन्द्रसाधन	२२-१
मंडप का प्रमाण	६-२६	त्रिकोणकुंड साधन	२३-९
द्वार वो वेदी प्रमाण स्थापन	७-२३	वृत्तकुंड साधन	२४-१
षोडशस्तम्भक्रम	९-१	विषमषडस्र साधन	२३-१
स्तम्भोपरवलिका	९-१७	पद्मकुंड साधन	२७-१
शिखर रचना	९-२४	विषमअष्टास्र साधन	२७-१
तोरण द्वार रचना	१०-६	समअष्टास्र साधन	२८-१
फलकमान वो कीलकमान	१०-२६	कुण्डखातमान	२९-१
कीलरोपण	११-१	अघमादिमेखलापक्ष	३०-१
मंडप रचना	११-२३	कुंडमेखला रचना	३०-१३
ध्वजादिमान	१२-८	नाभि रचना	३१-२०
नवकुंडीक्रमः	१४-१	योनि रचना	३२-१
पंचकुंडीक्रमः	१५-७	अर्काङ्गुलमेखला	३२-२१
वर्णभेदेन कुंडक्रमः	१५-१९	स्थंडित प्रकार	३२-२६
नवकुंडीचक्रम्	१६-१	प्रार्थना	३२-११

श्रीगणेशाय नमः। श्रीसरस्वत्यै नमः। श्रीगुरुचरणकमलेभ्यो नमः॥

अथ कुण्डमण्डपसिद्धिः



टीकाकारकृत् मंगलाचरणम्—

शिवतनयवरिष्ठं सर्वकल्याणमूर्तिमुभयफलसस्तं शोभितं मोदकेन ।

अरुणकुसुममालाव्यालयज्ञोपवीतं मम हृदयनिवासं श्रीगणेशं नमामि ॥१॥

गाढं ध्वान्तमनेकभानुजठरे राजत्कलाधारिणी

प्रोदञ्चच्छफरीयुगं दरदलत्पद्मेऽणुहीराऽवलिम् ।

स्वर्णोत्तुङ्गगिरिद्वयाधरचरीं दीनां कलिन्दात्मजां

पश्याश्चर्यमिदं शिवामिति वदन्स्मेरः शिवः पातु वः ॥१॥

श्रीगणेशजी को नमस्कार करके मैं विट्ठल दीक्षितकृत कुण्डसिद्धि ग्रन्थ की भाषा टीका करता हूँ । कैसे हैं गणेश जी? शिव जी के श्रेष्ठ पुत्र हैं और संपूर्ण कल्याण के मूर्ति हैं । फिर कैसे हैं? फल मोदक युक्त उभय हस्त से सुशोभित हैं और रक्तपुष्प माला व सर्प का यज्ञोपवीत धारण किये हैं ऐसे जो गणेशजी हैं सो मेरे हृदय में वास करें ।

शिवजी जो हैं सो रक्षा करने वाले हैं सो शिवजी पार्वती से कहते हैं कि हे पार्वती ! इन आश्चर्यों को देखो कि जहाँ पर सूर्य का प्रकाश होता है तहाँ पर तो अन्धकार होता ही नहीं और जहाँ पर अनेक सूर्य का प्रकाश है तहाँ पर तो अत्यन्त अन्धकार हो तो यह आश्चर्य है और अत्यन्त मनोहर पूर्ण चन्द्रमा में अति चंचल चपकी हुई दो मछली यह आश्चर्य देखो । फिर कहते हैं कि कमल में हीरा की जो पंक्ति यह आश्चर्य है और सोने के ऊँचे ऊँचे दो पर्वत उनके नीचे मध्यगत दुर्बल यमुना जी हैं, यह भी आश्चर्य है । इन आश्चर्यों को देखाते हुये शिवजी कहते हैं कि हे पार्वती ! अनेक सूर्यों के समान जो मुकुट में लाल मणि लगे हैं, उनके

मध्य में जो काले काले केश हैं वे कैसे शोभायमान हैं कि अनेक सूर्यों के बीच में कठिन अन्धकार यह आश्चर्यजनक है और पूर्ण चन्द्र के समान जो आपका मुखमंडल उसमें जो दोनों चञ्चल नेत्र हैं वही चञ्चल दो मछलियों के समान शोभायमान हैं और कमलरूपी जो मुख है वह कुछ हँसने से जो दाँतों की पंक्ति मालूम होती है और पर्वत के सुवर्णशृङ्गों के सदृश तुम्हारे जो स्तन हैं उनके बीच में जो पतली रोई है वही दुर्बल यमुना के सदृश शोभायमान है । इस प्रकार शंकरजी पार्वती के अङ्ग का वर्णन करते हुये आप लोगों की रक्षा करें ॥१॥

कृष्णात्रिगोत्रे नितरां पवित्रे पवित्रकर्माऽऽजनि ब्रूवशर्म ।

तत्सूनुना बिट्टलदीक्षितेन विरच्यते मण्डपकुण्डसिद्धिः ॥२॥

कृष्णात्रि गोत्र नित्य ही अति पवित्र है जिनका ऐसा पवित्र कर्म करनेवाले जो ब्रूव शर्मा उनके जो पुत्र बिट्टल दीक्षित वह मण्डपकुण्डसिद्धि नामक ग्रन्थ की रचना करते हैं ॥२॥

कृतोर्ध्वबाहोः समभूगतस्य कर्तुः शरांशः प्रपदोच्छ्रितस्य ।

यो वा सहस्तोऽस्य जिनांशकोऽपि स्यादङ्गुलं तत्तदिशभांशका ये ॥३॥

यवो यूका च लिक्षा च वालाग्रं चैवमादयः ।

कृतमुष्टिः करो रत्निररत्निरकनिष्ठिकः ॥४॥

अब हस्तादि मान कहते हैं । ऊपर को हाथ किया है समभूमि पर बराबर पैर से खड़ा या समभूमि पर पैर के अग्रभाग से याने पंजा के बल से खड़ा है यजमान उसका जो पाँचवाँ हिस्सा वह हाथ होता है ।

(तत्प्रकारः)

सूत लेकर पैर के अंगूठा से मध्यम अँगुली पर्यन्त नाप कर पाँच हिस्सा करें वही पाँचवाँ हिस्सा एक हाथ होता है । और हाथ का चौबीसवाँ हिस्सा एक अंगुल होता है । अंगुल का आठवाँ हिस्सा यव होता है ॥३॥

यव का आठवाँ हिस्सा यूका होता है । यूका का आठवाँ हिस्सा लिक्षा होता है । लिक्षा का आठवाँ हिस्सा बालाग्र होता है । बालाग्र का आठवाँ हिस्सा रथ के पहिया के नीचे की मट्टी होती है । इसका आठवाँ हिस्सा त्र्यसरेणु और इसका आठवाँ हिस्सा परमाणु होता है यह जानना ।

(प्रमाणं आदित्यपुराणे-जलान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः । प्रथमं तत्प्रमाणानां त्र्यसरेणुं प्रचक्षते ॥ त्र्यसरेणुस्तु विज्ञेयो येऽष्टौ स्युः परमाणवः । त्र्यसरेण्वस्तु ते ह्यष्टौ रथरेणुस्तु संस्मृतः) ॥

किया है मुष्टि जो यजमान ऐसा जो हाथ उसकी रत्नि संज्ञा होती है (२१ अंगुल का रत्नि हाथ होता है) और कानी अंगुली को छोड़ कर जो हाथ है वह अरत्निसंज्ञक है (२२॥ अंगुल का हाथ होता है) ॥४॥

ज्ञात्वा पूर्वं धरित्रीं दहनखननसंप्लावनैः संविशोध्य

पश्चात्कृत्वा समानां मुकुरजठरवद्वाचयित्वा द्विजेन्द्रैः ।

पुण्याहं कूर्मशेषौ क्षितिमपि कुसुमाद्यैः समाराध्य शुद्धे

वारे तिथ्यां च कुर्यात्सुरपतिककुभः साधनं मण्डपार्थम् ॥५॥

मण्डप कुण्ड बनाने के वास्ते पहिले जमीन को पहचानना चाहिए कि यज्ञ के योग्य यह भूमि है कि नहीं । बाद उस भूमि को जला देवे जला देने बाद जानुमात्र खनना । खन कर मिट्टी को चालना । बाद खोदे हुवे गड्ढे में पानी भरना । पानी भरने के बाद वह चाली हुई मट्टी गड़हे में छोड़ना । मट्टी को बराबर भर कर सीसाके पेट के समान चिकना करना । उस जमीन पर चार ब्राह्मण पुण्याहवाचन करे । उसके बाद यजमान कछुवा, शेष, बाराह तथा पृथिवी का फल पुष्पादि से पूजन करे । बाद विहित वार तथा तिथियों में मण्डप बनाने के लिये पूर्व दिशा का साधन करें ।

(प्रमाणं यथा शारदातिलके-) नक्षत्रराशिवाराणामनुकूले शुभेहनि ॥

ततो भूमितले शुद्धे तुषाङ्गारविवर्जिते । पुण्याहं वाचयित्वा तु मण्डपं रचयेच्छुभम् ॥ (भूमिपरीक्षा पंचरात्रे-) ततो भूमि परीक्षेत वास्तुज्ञानविशारदः । स्फुटिता च सशल्या च वल्मीका रोहिणी तथा । दूरतः परिवर्ज्या भूः

कर्तुरायुर्धनापहा । ईशकोणप्लवा सा च कर्तुः श्रीदा सुनिश्चितम् ॥
पूर्वप्लवा वृद्धिकरी वरदा तूत्तरा प्लवा । शेषकाष्ठा प्लवा भूमिर्धनायुर्गृह-
नाशिनी ॥ ब्राह्मणी घृतगन्धा स्यात्क्षत्रिया रक्तगन्धकृत् । क्षारगन्धा भवेद्वैश्या
शूद्रा विदगन्धिनी क्षितिः ॥ ब्राह्मणी भूः कुशोपेता क्षत्रिया शरसंकुला ।
कुशकाशाकुला वैश्या शूद्रा सर्वतृणाकुला (अनिषिद्धा यथा कुण्डसर्वस्वे-)
सिता पीता तथा रक्ता कृष्णावर्णसमन्विता । स्थिरोदका दृढा स्निग्धा भूमिः
सर्वसुखावहा । एवं बहुप्रकारः अत्र तु संक्षेपतो लिखितः) ॥५॥

नृपाङ्गुलैः सम्मितकर्कटेन सूत्रेण वा वृत्तवरं विलिख्य ।

रव्यङ्गुलं शङ्कुममुष्य मध्ये निवेशयेत्खाक्षिमिताङ्गुलीभिः ॥६॥

चतसृभिश्चापि ऋजूत्तमाभिः संस्पृष्टशीर्षं तु समेषिकाभिः ।

तच्छङ्कुभा यत्र विशेषपेयाद्वृते क्रमात्स्तो वरुणेन्द्रकाष्ठे ॥७॥

अब पूर्व दिशा का साधन मोटे हिसाब से कहते हैं । १६ अंगुल के परकाल से अथवा १६ अंगुल की रस्सी से १ गोल वृत्त करे । उसके बीच में १२ अंगुल का नोकदार कील गाड़े । उसके सिर पर २० अंगुल की ४ कील चारों दिशा से सीधी रखे, उसके बाद उस लकड़ी की छाया पहिले वहाँ पर चिह्न करने से पूर्व दिशा जानना चाहिए ॥६-७॥

कर्के कीटे गोमृगे यूकया सा

द्वाभ्यां चाल्या सिंहकुम्भत्रिकेऽपि ।

यां वै काष्ठां भानुमान् याति तस्यां

चाल्या द्वन्द्वे कार्मुके चालनं न ॥८॥

कर्क वृश्चिक वृष मकर इन राशियों के सूर्य में पूर्व दिशा की छाया को जब उत्तरायण सूर्य रहें तो उत्तर की तरफ १ यूका चालन और दक्षिणायन सूर्य हों तो दक्षिण की तरफ १ यूका चालन और सिंह कन्या तुला कुम्भ मीन मेष इन राशियों के सूर्य हों तो दो यूका चालन करे (याने उस चिह्न से २ यूका हटाकर चिह्न दे) और मिथुन

धन के सूर्य रहें तो जहाँ पर छाया का चिह्न है वही वास्तव में पूर्व पश्चिम जाने (याने इसमें नहीं चलाना चाहिए) और चिह्नों के स्थान में एक-एक कील गाड़ देवे ॥८॥

रज्जुं द्विघ्नां मध्यचिह्नां सपाशां प्राचीशङ्कौ पश्चिमे चापि दत्त्वा ।

कर्पेन्द्दीमान्दक्षिणे चोत्तरे च तच्चिह्ने स्यादक्षिणा चोत्तरा दिक् ॥९॥

अब उत्तर दक्षिण दिशा का साधन कहते हैं । जैसे पूर्व पश्चिम का साधन करके कील दिया है उसी कील से उत्तर दक्षिण का साधन करते हैं । जितना बड़ा मण्डप बनाना हो उसकी दूनी रस्सी ले । उसके मध्य में गाँठ दे और दोनों कोर पर फंदा बना दे । एक फंदा पूरब की कील में फँसावे दूसरा फन्दा पश्चिम की कील में फँसावे । बाद मध्य की गट्टी थाम कर बुद्धिमान् पुरुष दक्षिण व उत्तर की तरफ खींचे । जहाँ तक वह रस्सी जाय वहाँ पर एक एक कील गाड़ दे । इस प्रकार दक्षिण उत्तर दिशा सिद्ध होती है ॥९॥

निशि वा श्रवणोदये दिगैन्द्री गुरुभस्योदयनेऽथ वह्निभस्य ।

सुरवर्द्धकिवायुभान्तरालेऽप्यमुतः साधय पूर्ववच्च याम्याम् ॥१०॥

अब रात्रि में पूर्व दिशा का साधन कहते हैं कि श्रवण नक्षत्र का जहाँ पर उदय हो व पुष्य नक्षत्र का उदय हो व कृत्तिका का उदय हो तहाँ पूर्व जानना । अथवा चित्रा स्वाती के मध्य में पूर्व दिशा जानना और पूर्वोक्त प्रकार से दक्षिणोत्तर साधन करना ॥१०॥

चित्रां विध्वैकया स्वातीं अन्ययाऽपि शलाकया ।

तिर्यक्स्थान्तरचिह्नात्तु द्विमूले स्यात्स्फुटेन्द्रदिक् ॥११॥

अब दूसरा उपाय पूर्व साधन का कहते हैं । एक शलाका से चित्रा नक्षत्र की तारा को बेधन करे और दूसरी शलाका से स्वाती नक्षत्र की तारा को बेधन करे । फिर मध्य चिह्न से युक्त एक तीसरी शलाका दे और उसके मध्य चिह्न को पूर्व जाने ॥११॥

दिनमानदले सप्तांगुलच्छायाग्रतो हि यत् ।

शङ्कुमूले नीयमानं सूत्रं स्यादुत्तरा दिशा ॥१२॥

दिनमान के दल (मध्याह्न) में ७ अंगुल शंकु को गाड़े । जमीन में उस शंकु की छाया का अग्र जहाँ आवे वहाँ पर शंकु की जड़ से १ रेखा खींचे । वही दक्षिणोत्तर दिशा होती है ॥१२॥

परमदिनदिनोद्भवान्तरालं शरगुणितं च हतं रसैर्दृतिः स्यात् ।

समकुगतनरे नगांगुले त्विट् समगतया स्वभया भवेदुदीची ॥१३॥

जिस रोज दिक् साधन करना हो उस रोज के दिनमान को परम दिन में घटा दे । जो अंक शेष आवे उसको ५ से गुणन करे ६ से भाग दे तब छाया प्राप्त होती है । (उदाहरण परम दिन ३४/५, दिक् साधन दिवस का दिनमान २५/५५ को परम दिन में घटाया तो ८/१० शेष आया । इसको ५ से गुणा किया तो गुणने पर ४०/५० हुआ । इसको ६ से भाग दिया तो ६ अं० ६ यव ३ यूका की छाया जहाँ पर आवै उसके अग्र भाग पर चिह्न करे वही उत्तर दिशा जाने पूर्व पश्चिम पूर्ववत् साधे ॥१३॥

दिगन्तशङ्कुद्वयगं द्विपाशं विस्तारतुल्यं तु गुणं दलाङ्के ।

कोणे प्रकर्षे दितिवेदकोणेष्वेवं चतुष्कोणमतीव साधु ॥१४॥

वृत्त पर से चतुरस्र बनाने की रीति पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण क्रम से जो जो चिन्ह हैं उन उन चिन्हों के शंकु में १६ हाथ की रस्सी में फन्दा लगावे । पूर्व दक्षिण के शंकु के फंदा लगा कर अग्रिकोण की तरफ खींचे फिर दक्षिण पश्चिम के शंकु में फंदा लगाकर नैर्ऋत्य की तरफ खींचे । फिर उत्तर की शंकु में फंदा लगाकर वायव्य कोण की तरफ खींचे । फिर उत्तर पूर्व के शंकु में फंदा लगाकर ईशान कोण की तरफ खींचे । इस प्रकार से चौकोण सिद्ध होता है ॥१४॥

उच्चां भूमिं मण्डपस्य प्रकुर्याद्विस्तोन्मानामर्द्धहस्तोन्मितां वा ।

मध्ये भूमिं मण्डपेनोन्मितां च त्यक्त्वा कुर्यान्मण्डपश्चेद् द्वितीयः ॥१५॥

मण्डप की भूमि १ हाथ ऊँची अथवा आधा हाथ ऊँची (१२ अंगुल) बनावे । प्रतिष्ठादि में दूसरा मण्डप करें । इस मंडप के अतिरिक्त तो मंडप जितना बड़ा हो उतनी जमीन बीच में छोड़कर दूसरा मंडप बनावे ॥१५॥

दशसूर्यकरोन्मितोऽधमः स्याद्दिनशक्रमितैश्च करैस्तु मध्यः ।

धृतिभूपकरोन्मितो वरीयान्नखहस्तोऽप्यथ मण्डपस्तुलायाम् ॥१६॥

अब मण्डप का प्रमाण वास्तुशास्त्र से कहते हैं । दस हाथ व बारह हाथ का मण्डप अधम होता है । बारह हाथ व चौदह हाथ का मण्डप मध्यम होता है । सोलह हाथ व अठारह हाथ का मंडप उत्तम होता है । तुला दान में उत्तम मंडप २० हाथ का होता है और मंडप की लंबाई-चौड़ाई बराबर हो । यानि समान चौकोर बनावे ॥१६॥

(पंचरात्रे)-कनीयान्दशहस्तः स्यान्मध्यमो द्वादशोन्मितः । । तथा षोडश-भिर्हस्तेर्मण्डपं स्यादिहोत्तमम् । । (तथा लिङ्गपुराणे-) दशद्वादशहस्तौ च द्विद्विवृद्धिगतः क्रमात् । विंशब्दस्तप्रमाणेन मण्डपं कूटमेव वा । तथाष्टा-दशहस्तेन कलाहस्तेन वा पुनः । (षोडशाष्टादशहस्तमिते मंडपे नवकुण्डीपञ्च-कुण्डीपञ्चमेखलादिपक्षस्य समावेशो नास्ति तदर्थं मण्डपवृद्धिः कार्या) (मंत्रमुक्तावल्यां-) चतुर्विंशब्दस्तपर्यन्तं मण्डपवृद्धिः (वास्तुशास्त्रे) पञ्चहस्त-मारभ्य द्वात्रिंशहस्तपर्यन्तं वृद्धिः । (ब्राह्मणादिवर्णक्रमेण मण्डपप्रमाणं शैवस्त्रिद्वान्तशेखरे-) विप्राणां विंशतिर्हस्तो मण्डपस्तु सुशोभनः । कलाहस्तः (१६) क्षत्रियाणां वैश्यानां मीन (१२) हस्तकः । दशहस्तस्तु शूद्राणां हीनानमष्टहस्तकः । (मदनरत्ने-) विप्राणां मण्डपः प्राच्यां राज्ञामीशानकोणतः । विंशामुदीच्यां शूद्राणां प्रतीच्यां शस्त ईरितः । वैष्णवो मण्डपः प्राच्यां शैव ईशानकोणतः । शाक्तः प्रतीच्यां कौवेर्यामितरेषां सुपर्वणम् । महामण्डपतः प्राच्यां उदीच्यां वा स्नानमण्डपम् । गजहस्तायतिं दीर्घं चतुरस्रं चतुर्दिशम् । वितस्त्युच्छ्रायसहितं चतुर्द्वारोपशोभितम् । मध्ये महामण्डपतो ह्यर्द्धदेशं परित्यजेत् । तन्मध्ये स्थण्डिलं रम्यं हस्तमात्र-प्रमाणकम् । चतुरंगुलकोच्छ्रायं त्रितयस्वस्तिकैर्युतम् । (मंडपस्थलं

वास्तुशास्त्रे-) गृहस्योत्तरपूर्वेण प्रागुदक्प्रवणं गणे । देवतासन्निधौ वापि पुण्यदेशे जलाशये । सुसमे भूमिभागे च कृत्वा हेरम्बपूजनम् । मंडपं स्थापयेत्तत्र चतुरस्रमुदक्प्लवम् ॥१६॥

दिगन्तराले द्विकरं भवेद्वा चतुष्टयं वेदगजाङ्गुलैस्तत् ।

विवर्द्धितं मध्यवरिष्ठयोः स्याद्वेदी त्रिभागेन समाकरोच्चा ॥१७॥

अब द्वार का प्रमाण कहते हैं । मण्डप की चारों दिशा के मध्य में २ हाथ का चौड़ा ४ दरवाजा ४ हाथ ऊँचा अधम मण्डप में, २ हाथ ४ अंगुल का चौड़ा, ५ हाथ ऊँचा मध्यम मंडप में, २ हाथ ८ अंगुल का चौड़ा ५ हाथ ऊँचा दरवाजा उत्तम मण्डप में बनाना चाहिए ।

(पंचरात्रे-) कनिष्ठे द्विकरं द्वारं चतुरङ्गुलवृद्धितः ॥ मध्यमोत्तरयोर्वेदी मण्डपस्य त्रिभागतः ॥

मध्यवेदी मंडप के तीसरे हिस्से में बनावे । जैसे कि मंडप को नव कोष्ठ करे, नव कोष्ठ के बीच के कोष्ठ में १ हाथ ऊँची बराबर चतुष्कोण मध्यवेदी होती है । यदि मध्य में कुण्ड करना हो तो कुंड के पूर्व भाग में ४ हाथ की या २ हाथ की चतुष्कोण प्रधान वेदी बनावे ।

(प्रमाणं शान्तिमयूख-कोटिहोमे) मध्ये तु मण्डपस्यापि कुण्डं कुर्याद्विचक्षणः ॥ अष्टहस्तप्रमाणेन आयामेन तथैव च ॥१॥ कुण्डस्य पूर्वभागे तु वेदीं कुर्याद्विचक्षणः ॥ चतुर्हस्तां समां चैव हस्तमात्रोच्छ्रितां नृप ॥१७॥

तुलाप्रदानेऽधममध्ययोः स्यात् सा पञ्चहस्तोत्तमकेऽद्रिहस्ता ।

ईशानभागे ग्रहवेदिका तु हस्तोन्मितोच्छ्रायवती त्रिवप्रा ॥१८॥

तुलादान में मध्यवेदी विशेष कहते हैं । अधम और मध्यम मंडप में ५ हाथ की मध्य वेदी, और उत्तम मण्डप में ७ हाथ की लंबी एवं चौड़ी और १ हाथ ऊँची मध्य वेदी बनावे । ईशान भाग में ग्रहवेदी बनावे । १ हाथ ऊँची १ हाथ चौड़ी एवं लंबी तीन सीढ़ीवाली एवं अग्निकोण में योगिनी वेदी, नैऋत्य में वास्तुवेदी और वायव्य में क्षेत्रपाल वेदी बनावे ।

(तत्र प्रमाणं-) आग्नेय्यां योगिनी वेदी वास्तुवेदी तु नैऋते ॥ वायव्ये क्षेत्रपालानां ईशाने ग्रहवेदिका ॥ (ततो वप्रप्रमाणम्-) द्विरंगुलोच्छ्रितो वप्रः प्रथमः समुदाहृतः । त्र्यंगुलोच्छ्रायसंयुक्तः वप्रद्वयमथोपरि ॥ द्व्यंगुलस्तत्र विस्तारः सर्वेषां कथितो बुधैः ॥

प्रथम सीढ़ी २ अंगुल चौड़ी २ अंगुल ऊँची, दूसरी सीढ़ी २ अंगुल चौड़ी ३ अंगुल ऊँची, तीसरी सीढ़ी २ अंगुल चौड़ी ३ अंगुल ऊँची सब वेदी में बनाना (कुछ लोग २ वप्र रखते हैं एक वप्र २ अंगुल ऊँचा एवं चौड़ा, दूसरा उसके ऊपर ३ अंगुल ऊँचा २ चौड़ा और वेदी की ऊँचाई १ बिता, चौड़ा १ हाथ का होता है और भी वेदी का प्रमाण शैवसिद्धान्त-शेखरकार कहते हैं ॥

“वेदी चतुर्विधा प्रोक्ता चतुरस्रा च पद्मिनी । श्रीधरी सर्वतोभद्रा दीक्षासु स्थापनादिषु ॥ चतुरस्रा चतुष्कोणा वेदी सर्वफलप्रदा ॥ तडागादिप्रतिष्ठायां पद्मिनी पद्मसन्निभा ॥ राज्ञां स्यात्सर्वतोभद्रा चतुर्भद्राभिषेचने ॥ विवाहे श्रीधरी वेदी विंशत्यस्त्रसमन्विता ॥ दर्पणोदरसंकाशा निम्नोन्नतविवर्जिता” इति कर्म विशेषे ॥ १८ ॥

समन्निभागे च सूत्रं प्रदद्यादुदग्दक्षिणं चापि पूर्वापरञ्च ।

ततस्त्र्यंशपूर्तौ च कोणेषु दद्यात्समस्तम्भकान्द्वादशैवेषु हस्तान् ॥ १९ ॥

वेद्याः कोणे हस्तिहस्तोच्चवेदस्तम्भान्दद्याद्वह्निदित्तः सचूडान् ।

प्रादक्षिण्यात्पञ्चमांशं तु भूमौ दद्यादेवं षोडशस्तम्भसंस्था ॥ २० ॥

अब १६ खंभा गाड़ने की विधि कहते हैं । मंडप का दक्षिण उत्तर पश्चिम पूर्व को तीन तीन भाग करके सूत्र देवे । जहाँ-जहाँ सूत्र की समाप्ति और जहाँ-जहाँ संधि हो तहाँ-तहाँ पर अग्निकोण से गाड़े । पहिले बारह खंभा बाहर के गाड़ना पाँच-पाँच हाथ के और चूड़ के सहित दो-दो खंभे प्रतिदिशा में ८, चारों कोन में ४ एवं १२ खंभा पाँचवाँ हिस्सा १ हाथ भया सो जमीन में गाड़ना । बाद ४ खंभा चूड़ के सहित आठ-आठ हाथ का ८ अंगुल चौड़ा बीच की वेदी के अग्निकोण से उसका

पाँचवाँ हिस्सा १ हाथ १४ अंगुल ७ यव १॥ यूका प्रदक्षिण क्रम से जमीन में गाड़ना । इस तरह १६ खंभा हुआ ॥

(प्रमाणं शारदातिलके-) स्तम्भोच्छ्राये शिलान्यासे सूत्रयोजनकीलके । खननावटसंस्कारे प्रारम्भो वह्निगोचरे इति ॥ (वास्तुशास्त्रे) पंचमाशं खनेद्भूमौ सर्वसाधारणे विधिः ॥ इति ॥ १९-२० ॥

स्तम्भेषु तिर्यग्बलिका निधेयाश्रूडासु कर्णेष्वथवा बहिस्ताः ।

पूर्वापरं दक्षिणसौम्यदिक्स्थं कोणेऽन्तरा काष्ठचयं निदध्यात् ॥ २१ ॥

आगे १६ खंभों पर १६ बलिका देना । छिद्रवाली चूड़ में पहिनाना । पूर्व पश्चिम, दक्षिण उत्तर दो-दो लकड़ी ८ लकड़ी और ४ कोण में ४ लकड़ी यह २८ लकड़ी सब हुई और मध्य में शिखर (याने लट्टू काठ का) बनाना, उससे ४ कोनों पर ४ लकड़ी लट्टू में से खम्भे तक देना । सब मिला कर ३२ लकड़ी हुई और स्तम्भ लेकर ४८ हुई ॥ २१ ॥

मध्यभागशिखरं रचयित्वा छादयेदपि कटैर्ऋजुवंशैः ।

द्वारवर्जमिह मण्डपमेनं स्तम्भकानपि सुवस्त्रसमूहैः ॥ २२ ॥

अब पहिले कहे अनुसार शिखर बनाकर कोमल बाँस की चटाई या फूस इत्यादि से चारों द्वार को छोड़ कर छावे, या चारों तरफ टट्टी से ढाँके वायु इत्यादि के रक्षार्थ ४ द्वार की टट्टी पृथक् से लगावे और १६ खंभो में अच्छे-अच्छे वस्त्र लपेटे और ऐना, चवँर बाँधना चाहिए ।

(प्रमाणं-) नारिकेलदलैवापि पल्लवैर्वापि वेणुभिः । आच्छाद्या मण्डपाः सर्वे द्वारवर्जन्तु सर्वतः (वास्तुशास्त्रे-) । कटैः सद्भिस्तु संछाद्य विजयाद्यास्तु मण्डपाः । (हयग्रीवपंचरात्रे-) दर्पणैश्चामरैर्घटैः स्तम्भान्वस्त्रैर्विभूषयेदिति ॥ २२ ॥

पूर्वादिदिक्षु रचयेदपि तोरणानि न्यग्रोधजन्तुफलपिप्लवृक्षराजैः ।

अश्वत्थजन्तुफलपर्कटिभूरिषद्भिर्वैषामभावत इमान्यथवैककेन ॥ २३ ॥

हस्ताद्वहिर्मण्डपतः शराङ्गस्वरैः करैस्तान्यधमादिकेषु ।

दीर्घाणि च प्राहुरथायतिः स्यात्तेषां द्विहस्ता चरणप्रवृद्ध्या ॥ २४ ॥

अब मंडप के दरवाजे से एक हाथ बाहर पूर्वादिक दिशाओं में तोरणद्वार कहते हैं । अधमादि मण्डप के क्रम से पूर्व से वट वा पीपर ५ हाथ लंबा २ हाथ चौड़ा अधम में और मध्यम में ६ हाथ लंबा २ हाथ ६ अंगुल चौड़ा तोरण लगावे । दक्षिण में गूलर का, पश्चिम में पीपल वा पाकर का, उत्तर में पाकर वा वट का पूर्ववत् काम में लावे । अथवा सब वृक्ष की लकड़ी न मिले तो एक ही वृक्ष का चारों द्वार बनावे । उसका पाँचवाँ हिस्सा १ हाथ, या छः हाथ का पाँचवाँ हिस्सा १ हाथ ४ अंगुल ६ यव, सात हाथ का पाँचवाँ हिस्सा १ हाथ ४ अंगुल ४ यव ६ यूका इस हिसाब से जमीन में गाड़ना चाहिए ।

(महाकपिलपंचरात्रे-) देवास्तोरणरूपेण संस्थिता यज्ञमण्डपे । विघ्नविध्वंसनार्थाय रक्षार्थमध्वरस्य च । न्यसेन्यग्रोधमैन्द्रां तु याम्यां चौदुम्बरं तथा । वारुण्यां पिप्पलं चैव कौवैर्या प्लक्षजं न्यसेत् ॥ अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षवटशाखाकृतानि च । मंडपस्य प्रतिदिशं द्वाराण्येतानि कारयेत् ॥

और चारों काष्ठों में-से कोई न मिले तो शमी की, जामुन की खैर की या ताल वृक्ष की, यह सब न मिले तो जिस लकड़ी की चाहे उसी का तोरण बनावे ॥ २३-२४ ॥

स्तम्भार्धमानं फलकं तु तिर्यक् नवेशविश्वप्रमितांगुलाश्च ।

तन्मूर्ध्नि कीलाः स्वतुरीयभागैस्ततस्तु शूलाकृतयश्च ते स्युः ॥ २५ ॥

तद्वेशनं द्वित्रियुगांगुलानि शैवे तु विष्णोर्यजनेङ्गुलर्द्धिः ।

कीलेषु शंखारिगदाम्बुजांकेष्विध्वंशरोपः किल तोरणेषु ॥ २६ ॥

स्तम्भों के ऊपर स्तम्भों का आधा फलक तीन छिद्रवाला स्तम्भों के चूड़ में पहिनाना । उसका प्रमाण—पाँच हाथ का आधा २॥ हाथ,

६ हाथ का आधा ३ हाथ, ७ हाथ का आधा ३॥ हाथ, इस प्रकार से अधम मध्यम उत्तम मण्डप में क्रम से जानना । उसके ऊपर मध्य में कील देना, शिवयाग में त्रिशूल चारो दिशा में, विष्णुयाग में शंख, चक्र, गदा, पद्म पूर्वादि क्रम से देवे । प्रमाण—अधम में ९ अंगुल लंबा २। अंगुल चौड़ा २ अंगुल तोरण पर गाड़ना, मध्यम में ११ अंगुल लंबा २॥ चौड़ा ३ अंगुल गाड़ना । उत्तम में १३ अंगुल लंबा ३। अंगुल चौड़ा ४ अंगुल गाड़ना ॥ इति शैवयागे ॥ विष्णुयागे तु ॥ अधम मंडप में शंख १० अंगुल लंबा २॥ अंगुल चौड़ा, मध्यम में १२ अंगुल लंबा ३ अंगुल चौड़ा, उत्तम में १४ अंगुल लंबा ३॥ अंगुल चौड़ा । अधमादि मंडप के शंखादि कीलों का पंचमांश तोरण पर गाड़े और द्वार का पाँचवाँ हिस्सा मंडप से १ हाथ बाहर पूर्ववत् गाड़ना चाहिए ।

(प्रमाणं शारदातिलके—) तिर्यक्फलकमानं स्यात्स्तम्भानामर्द्धमानत इति । (मन्त्रमुक्तावल्यां—) अग्रयोर्मध्यभागे च पट्टिकायां त्रिशूलकम् (पिङ्गलमते—) शूलेन चिह्निताः कार्या द्वारशाखास्तु मस्तके । शूले नवांगुलैर्दैर्घ्यं तुरीयांशेन विस्तृतिः । ऋजु वै मध्यशृङ्गं स्यात्किंचिद्वक्रं तु पक्षयोः । प्रथमं तत्समाख्यातं द्व्यंगुलं रोपयेत्तथा शङ्खं चक्रं गदाम्बुजम् ॥ प्रागादिक्रमयोगेन न्यसेत्तेषां स्वदारुजम् ॥ २५-२६॥

उद्यत्पत्रफलातिनम्रविलसद्रम्भाभिरालिङ्गितः

स्तम्भो नेकदलैरसालविटपैः सर्वत्र संवेष्टितः ।

राजच्चामरसंप्रबद्धमुकुरोदञ्चद्वितानान्वितो

युक्तः पुष्पफलैः फलाय भवतां भूयान्महामण्डपः ॥ २७॥

उगे हैं कोमल-कोमल पत्ते तथा लगे हैं फल जिसमें जो कि स्तम्भ को स्पर्श कर रहे हैं । ऐसे केले के अनेक स्तम्भों को द्वारों पर लगाकर आम के पल्लव की बन्दनवार बनाकर सम्पूर्ण मंडप को वेष्टन करे । और मंडप में पचरंगा चँदवा लगावे । सीसा, चँवर, पुष्पफल लगा करके सुशोभित करे, ऐसा जो शोभायमान महामण्डप वह शुभ फल को देनेवाला होता है ।

ध्वजान्द्विहस्तायतिकांश्च पञ्चहस्तान्सुपीतारुणकृष्णनीलान् ।

श्वेतासितश्वेतसितान्दिगीशवाहान्वहेद्विक्रवंशशीर्षे ॥ २८ ॥

अब ध्वजा का मान कहते हैं । त्रिकोण २ हाथ चौड़ा ५ हाथ लंबा ध्वजा दिशाओं के वाहन व रंग से युक्त तथा दस हाथ के बाँस के सिर पर लगावे । पीला रंग पूर्व में । लाल रंग अग्रिकोण में । काला दक्षिण में । नीला नैऋत्य में । सफेद रंग ईशान में । धूम्र वा हरा रंग वायव्य में । सफेद व हरा रंग उत्तर में । सफेद रंग ईशान में । सफेद वा लाल रंग ईशान पूर्व के मध्य में । पीत वा काला ध्वजा निऋति वरुण के मध्य में लगावे । अब दिशा के जो स्वामी हैं, उनके वाहन कहते हैं । पूर्व के पीत ध्वजा में हस्ती । अग्रि के रक्त ध्वजा में मेढा । दक्षिण के कृष्ण ध्वजा में महिष । निऋति के नील ध्वजा में सिंह । पश्चिम के सफेद ध्वजा में मछली । वायव्य के धुवाँ के रंग वा हरे रंग के ध्वजा में हरिण । उत्तर के सफेद वा हरे रंग के ध्वजा में घोड़ा । ईशान के सफेद ध्वजा में बैल । पूर्व ईशान के मध्य में सफेद या लाल ध्वजा में हंस । पश्चिम निऋति के मध्य में पीत एवं काले ध्वजा में गरुड़ लिखना चाहिए ।

(प्रमाणं प्रतिष्ठासारसंग्रहे-) पीतरक्तादिवर्णाश्च पञ्चहस्तध्वजाः स्मृताः ।

द्विपञ्चहस्तैर्दण्डैस्ते वंशजैः संयुता मता ॥

(क्रियासारे-) मातङ्गवत्समहिषसिंहमत्स्यैणवाजिनः । वृषभं हंसगरुडौ ध्वजमध्ये क्रमाल्लिखेत् । पञ्चमांशं निखनेदिति ।

पाँचवाँ हिस्सा भूमि में गाड़ना । दस हाथ का पाँचवाँ हिस्सा २ हाथ हुआ ॥ २८ ॥

लोकेशवर्णास्त्रियुताः पताकाः शैलेन्दुदैर्घ्यायतिकांश्च मध्ये ।

चित्रं ध्वजं दिक्करदैर्घ्यवंशत्रिदोस्ततं प्रान्तगकिङ्किणीकम् ॥ २९ ॥

श्वेतां च नवमीं पूर्वेशानयोर्मध्यतो बुधः ।

विन्यसेत्तु पताकां च ध्वजांस्तानपि पूर्वतः ॥ ३० ॥

जो लोकेश का वर्ण (याने ध्वजा का रंग) पूर्व में कह आये हैं, उसी प्रकार का रंग पताका का भी करे । अब उसकी लंबाई चौड़ाई और शस्त्र कहते हैं । पताका १ हाथ चौड़ा ७ हाथ लंबा (दशदिक्पाल के शस्त्र) पूर्व के पताका में वज्र, अग्रिकोण के पताका में शक्ति, दक्षिण के पताका में दण्ड, नैर्ऋत्य के पताका में खड्ग, पश्चिम के पताका में पाश, वायव्य के पताका में अङ्कुश, उत्तर के पताका में गदा, ईशान के पताका में त्रिशूल, पूर्वेशान के मध्य पताका में कमण्डल और पश्चिम निर्र्धति के मध्य पताका में चक्र लिखना चाहिए । दस हाथ के बाँस के सिर पर लगा कर दिशा-विदिशा में पाँचवाँ हिस्सा (पंचमांश २ हाथ) भूमि में गाड़े और मंडप के मध्य में या ईशान में पंचरंगा ध्वजा १ दस हाथ लंबा ३ हाथ चौड़ा वा ३ हाथ चौड़ा ५ हाथ लंबा जो महाध्वज उसमें बैल लिखे । उसके कोन पर घंटी व घुँघरू लगावे, चँवर बाँधे और उसे मध्य शिखर पर लगावे । १० हाथ या १६ हाथ या २१ या ३२ हाथ का बाँस रहना चाहिए ॥

ध्वजदण्डस्तु कर्तव्यो द्वात्रिंशब्दस्तसम्मितः । इति ॥ (प्रमाणं-) स्यादिन्द्रः करिवाहनः कुलिशभृत्प्राच्यां पिशाङ्गद्युतिस्त्वाम्रेय्यामजवाहनोऽजरुचिः शक्त्या युतो हव्यवाट् ॥ याम्यां दण्डकरो यमश्च महिषारूढोऽञ्जनाभस्तथा ॥ नैर्ऋत्यां करवालभृन्निर्ऋतिजः सिंहादिरूढोऽसितः ॥ वारुण्यां झषगो हिमद्युतिरपां नाथश्च पाशान्वितो वायव्यां मृगवाहनोऽङ्कुशकरो वायुः शुकाभः स्मृतः । कौवेर्यां नरवाहनो दिशि गदापाणिर्विचित्रस्तथा ॥ रौद्र्यां सद्वृषवाहनः शशिनिभः स्याच्छङ्करः शूलभूत् । हंसस्थोऽरुणकः कमण्डलुकरः शक्रेशयोरन्तराऽनन्तोऽपांपतिरक्षसो घननिभस्ताक्षर्याधिरूढोऽरिभूत् ॥

किसी का मत है कि ध्वजा एक हाथ लंबा १ बिता चौड़ा और पताका भी उसी नाप का बनाना चाहिए ॥ २९-३० ॥

प्राच्याश्चतुष्कोणभगेन्दुखण्डत्रिकोणवृत्ताङ्गभुजाम्बुजानि ।

अष्टास्रि शक्रेश्वरयोस्तु मध्ये वेदास्रि वा वृत्तमुशन्ति कुण्डम् ॥ ३१ ॥

कुण्डमण्डपसिद्धिः -

(ध्वजपताका निवेशचक्रम्)

पूर्व में	त्रिकोण ध्वजा पीत	वाहन हस्ती सफेद	पताका	चतुष्कोण पीत	वज्र रक्त
अग्नि कोण में	त्रिकोण ध्वजा रक्त	वाहन बकरा सफेद	पताका	चतुष्कोण रक्त	शक्ति पीत
दक्षिण दिशा में	त्रिकोण ध्वजा कृष्ण	वाहन महिष रक्त	पताका	चतुष्कोण कृष्ण	दण्ड रक्त
नैऋत्य में	त्रिकोण ध्वजा नीला	वाहन सिंह सफेद	पताका	चतुष्कोण नील	खड्ग रक्त
पश्चिम में	त्रिकोण ध्वजा सफेद	वाहन मछली धूम्र	पताका	चतुष्कोण सफेद	पाश धूम्र
वायव्य में	त्रिकोण ध्वजा धूम्र या हरा	वाहन हरिन कृष्ण	पताका	चतुष्कोण धूम्र व हरा	अंकुश रक्त
उत्तर में	त्रिकोण ध्वजा सफेद या हरा	वाहन घोड़ा स्वर्ण रंग	पताका	चतुष्कोण सफेद व हरा	गदा पीत
ईशान में	त्रिकोण ध्वजा सफेद	वाहन बैल रक्त	पताका	चतुष्कोण सफेद	त्रिशूल कृष्ण
ईशान पूर्व के मध्य में	त्रिकोण ध्वजा सफेद वा रक्त	वाहन हंस सफेद	पताका	चतुष्कोण सफेद या रक्त	कमंडल रक्त वा पीत
निऋति पश्चिम के मध्य में	त्रिकोण ध्वजा सफेद वा कृष्ण वा पीत	वाहन गरुड़ पीत	पताका	चतुष्कोण सफेद या काला या पीत	चक्र चित्र-विचित्र

नवकुण्डी करना हो तो इस प्रकार से कुण्ड बनावे । यथा पूर्व में चतुरस्र कुंड, अग्निकोण में योनिकुंड, दक्षिण में अर्धचन्द्रकुंड, नैऋत्य कोण में त्रिकोण कुंड, पश्चिम में वृत्त कुण्ड, वायव्य कोण में षट्कोण

कुण्ड, उत्तर में पद्मकुण्ड, ईशान में अष्टकोण कुण्ड और अष्टास्र चतुरस्रके बीच में चतुरस्र वा वृत्त, नवां आचार्यकुण्ड बनावे । यह नवकुण्डी पक्ष है ॥३१॥

आशेशकुण्डैरिह पञ्चकुण्डी चैकं यदा पश्चिमसोमशैवे ।

वेद्याः सपादेन करेण यद्वा पादान्तरेणाखिलकुण्डसंस्था ॥३२॥

अब पञ्चकुण्डीपक्ष कहत हैं—पूर्व में चतुरस्र, दक्षिण में अर्धचंद्र, पश्चिम में वृत्त, उत्तर में पद्म, ईशान में चतुरस्र या वृत्त । किसी का मत यह है कि ईशान का कुण्ड अष्टास्र है, वही होना चाहिये । चतुरस्र, वृत्त नहीं । किसी का मत यह है कि जैसा पूर्व में कह आये हैं वैसा रखना । और एक कुण्ड का पक्ष करना हो तो पश्चिम में या उत्तर में या ईशान में बनावे । सब कुण्ड मध्य वेदी से सवा हाथ (याने ३० अंगुल) छोड़कर अथवा मध्यवेदी जितनी नाप में हो उसका चौथाई हिस्सा हटकर कुण्ड बनावे । अथवा मण्डप को नव कोष्ठ मंडप का जो किया है, उन कोष्ठों के मध्य में बनावे । मंडप मध्यमपक्ष का हो तो कोई १३ अंगुल का अन्तर देकर बनाने को कहते हैं ॥३२॥

विप्राच्छ्रुत्यस्रं च वृत्तं च वृत्तार्धं त्र्यस्त्रि स्याद्वेदकोणानि वापि ।

सर्वाण्याहुर्वृत्तरूपाणि चान्ये योन्याकाराण्यङ्गनानां तु तानि ॥३३॥

एक कुण्ड की विधि में वर्णभेद से बनावे । जैसे कि ब्राह्मण के लिये चतुरस्र, क्षत्रिय के वास्ते वृत्त, वैश्य के वास्ते अर्धचन्द्र, शूद्र के वास्ते त्रिकोण इस प्रकार से बनावे अथवा चारों वर्णों के वास्ते वृत्त (गोल) या चतुरस्र (चौकोण) कुण्ड बनावे । यदि स्त्री कर्ता होय तो योनिकुण्ड बनाना वा चतुरस्र कुण्ड बनाना । शूद्रवद्व्यहारात् पूर्व में लिख आये है कि चारों वर्ण को चतुरस्र बनाना चाहिए । इसलिये चतुरस्र कहा है ॥३३॥

नवकुंडीचक्रम्

दिशा	कुण्ड	फल	योन्यग्र	होता मुख
पूर्व	चतुरस्रकुंड	सिद्धिफल	दक्षिण योनि उदगग्रा	उत्तर मुख
अग्नि	योनिकुंड	पुत्रफल	योनिकुंड में यानि नहीं	उत्तर मुख
दक्षिण	अर्धचन्द्रकुंड	शुभ फल	दक्षिण योनि उदगग्रा	उत्तर मुख
नैऋति	त्रिकोण कुंड	शत्रु नाश	पश्चिम योनि पूर्वाग्रा	पूर्व मुख
पश्चिम	वृत्तकुंड	शांति फल	पश्चिम योनि पूर्वाग्रा	पूर्व मुख
वायव्य	षट्कोण कुंड	मृत्युछेदन फल	पश्चिम योनि पूर्वाग्रा	पूर्व मुख
उत्तर	पद्मकुंड	वर्षा फल	पश्चिम योनि पूर्वाग्रा	पूर्व मुख
ईशान	अष्टास्रकुंड	आरोग्य फल	पश्चिम योनि पूर्वाग्रा	पूर्व मुख
पूर्वेशान मध्ये	चतुरस्र या वृत्त कुंड	आचार्य कुंड प्रथम हवन	दक्षिण योनि उदगग्रा	उत्तर मुख
एक कुण्डी पक्षे चतुरस्रं वृत्तं वा योनिः पश्चिमपूर्वाग्रा				पूर्व मुख

पंचकुंडीचक्रम्

पूर्व में	चतुरस्र
दक्षिण में	अर्द्ध चंद्र
पश्चिम में	वृत्त
उत्तर में	पद्म
ईशान में	अष्टास्र चतुरस्र या वृत्त

सिद्धिः पुत्राः शुभं शत्रुनाशः शान्तिमूर्तिच्छिदे ।

वृष्टिरारोग्यमुक्तं हि फलं प्राच्यादिकुण्डके ॥ ३४ ॥

पूर्वादिक कुण्डों के फल कहते हैं—चतुरस्र कुण्ड में सिद्धिकामना के लिये हवन करना, पुत्रकामना के लिये योनि कुण्ड में हवन करना, शुभ कामना के लिये अर्धचन्द्र कुण्ड में हवन करना, शत्रुनाश के लिए

त्रिकोण कुण्ड में हवन करना, शांति के लिये वृत्त कुण्ड में हवन करना, मृत्युच्छेदन के लिये षट्कोण कुण्ड में हवन करना, वृष्टि के लिये पद्मकुण्ड में हवन करना और आरोग्यता के लिये अष्टकोण कुण्ड में हवन करना चाहिए। इससे यह सब फल प्राप्त होता है।

शतार्धे रत्निः स्याच्छतपरिमितेऽरत्निविततं
सहस्रे हस्तं स्यादयुतहवने हस्तयुगलम् ।

चतुर्हस्तं लक्षे प्रयुतहवने षट्करमितं
ककुब्भिर्या कोटौ नृपकरमपि प्राहुरपरे ॥३५॥

अब आहुति के प्रमाण से कुंड की रचना कहते हैं। ५० आहुति से २१ अंगुल का रत्निमात्र का, सौ आहुति में अरत्निमात्र २२ अं० ४ यव का, १००० आहुति में १ हाथ २४ अं० का, १०००० आहुति में २ हाथ ३४ अं० का, १००००० आहुति में ४ हाथ ४८ अंगुल का, १०००००० आहुति में ६ हाथ ५८ अं० ६ यव का, १००००००० आहुति में ८ हाथ का ६७ अंगुल ७ यव का और कोई आचार्य कहते हैं कि कोटि आहुति में १६ हाथ का कुंड बनाना चाहिए।

लक्षैकवृद्ध्या दशलक्षकान्तं करैकवृद्ध्या दशहस्तकं च ।

कोट्यर्धदिग्विंशतिलक्षलक्षदलेमुनिष्वर्तुकृशानुहस्तम् ॥३६॥

अब सूक्ष्म द्रव्य की आहुति के हिसाब से कुण्ड का विस्तार कहते हैं। जैसे १००००० आहुति में १ हाथ का, इसी प्रकार एक एक लक्ष की वृद्धि में एक एक हाथ की वृद्धि करता जाय, यथा— १ लाख में १ हाथ, २ लाख में २ हाथ, ३ लाख में ३ हाथ, ४ लाख में ४ हाथ, ५ लाख में ५ हाथ, ६ लाख में ६ हाथ, ७ लाख में ७ हाथ, ८ लाख में ८ हाथ, ९ लाख में ९ हाथ और १० लाख में १० हाथ का कुण्ड बनावे। ५० लाख आहुति में ७ हाथ का,

१० लाख में ५ हाथ का, २० लाख में ६ हाथ का और ५० हजार में ३ हाथ का कुण्ड बनाना चाहिए ।

वेदाक्षीणि युगाग्रयः शशियुगान्यष्टाब्धयस्त्रीषवो-

ऽष्टाक्षा वह्निरसाः स्वराङ्गकमिता नेत्रर्षयोऽक्षस्वराः ।

अङ्गुल्योऽथ यवाः खमभ्रमिषवः खं पञ्चषट् सागराः

सप्ताभ्रं मुनयस्त्वमी निगदिता वेदास्रके बाहवः ।। ३७ ।।

अब १ हाथ से लेकर १० हाथ के कुण्ड तक का मान कहते हैं । और क्षेत्रफल भी आगे चक्र में लिखेंगे । एक हाथ के कुण्ड में २४ अंगुल चौड़ाई लंबाई होती है और दो हाथ के कुण्ड में ३४ अंगुल चौड़ाई लंबाई होती है । तीन हाथ के कुण्ड में ४१ अंगुल ५ यव चौड़ाई लंबाई होती है । चार हाथ के कुण्ड में ४८ अंगुल चौड़ाई लंबाई होती है । पाँच हाथ के कुण्ड में ५३ अंगुल ५ यव चौड़ाई लंबाई होती है । छ हाथ के कुण्ड में ५८ अंगुल ६ यव चौड़ाई लंबाई होती है । सात हाथ के कुण्ड में ६३ अंगुल ४ यव चौड़ाई लंबाई होती है । आठ हाथ के कुण्ड में ६७ अंगुल ७ यव चौड़ाई लंबाई होती है । नौ हाथ के कुण्ड में ७२ अंगुल चौड़ाई लंबाई होती है । दस हाथ के कुण्ड में ७५ अंगुल ७ यव चौड़ाई लंबाई होती है ।

अब १ हाथ से १० हाथ तक चतुरस्र कुण्ड के भुज का क्षेत्रफल कहते हैं— स्थूल भुजमान से कहीं कहीं क्षेत्रफल से विरोध पड़ता है । जैसे दो हाथ में भुज ३४ हैं उनको ३४ से गुणने पर ११५६ होता है । परन्तु दो हाथ के क्षेत्र का फल एक हाथ के क्षेत्रफल से दूना १ हाथ २४ अंगुल से गुणा किया तो ५७६ एक हाथ का क्षेत्रफल हुआ । इसी प्रकार इस क्षेत्रफल को २ से गुणा करने से २ हाथ का क्षेत्रफल ११५२ होता है । इसी तरह उसे गुणा करने से तीन हाथ का १७२८, ४ से गुणा ४ हाथ का २३०४, ५ से गुणा ५ हाथ का २८८०, ६ से ६ हाथ ३४५६, ७ से ७ हाथ ४०३२, ८ से ८ हाथ ४६०८, ९ से ९

हाथ ५१८४, १० से १० हाथ ५७६० इस प्रकार क्षेत्रफल ठीक करना चाहिये क्योंकि न्यूनाधिक होने से दोष होता है।

(प्रमाण-) खाताधिके भवेद्रोगी हीने धेनुधनक्षयः॥ वक्रकुण्डे च संतापो मरणं छिन्नमेखले॥ मेखलारहिते शोकोऽभ्यधिके वित्तसंक्षयः॥ भार्याविनाशनं प्रोक्तं कुण्डे योन्या विनाकृते॥ कुण्डं यत्कण्ठरहितं सुतानां तन्मृतिप्रदम्॥ अनामिके मृत्युमुपैति बन्धुस्तथैव मानाधिकके स्वयं चेति॥ परशुरामः॥ शारदातिलके च॥३०॥

स्थूलभुजमानचक्रम्

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	हस्त
२४	३४	४१	४८	५३	५८	६३	६७	७२	७५	अंगुल
०	०	५	०	५	६	४	७	०	०	यव
५७६	११५२	१७२८	२३०४	२८८०	३४५६	४०३२	४६०८	५१८४	५७६०	क्षेत्रफल

अथ सूक्ष्मभुजमानचक्रम्

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	१६	हाथ
२४	३३	४१	४८	५३	५८	६३	६७	७२	७५	९६	अंगुल
०	७	४	०	५	६	३	७	०	७	०	यव
०	४	४	०	२	२	७	०	०	१	०	यूका
०	४	३	०	४	३	७	३	०	२	०	लिखा
०	३	४	०	६	२	२	५	०	०	०	बालाग्र
०	५	५	०	४	६	०	६	०	४	०	स्थ
०	४	०	०	०	०	१	०	०	०	०	त्र्यस्त

कुण्डत्रयी दक्षिणयोनिरैन्द्र्याः सौम्याग्रका स्यादितराणि पञ्च ।

पश्चाद्भगानीन्द्रदिग्रकाणि योनिर्न कोणे न च योनिकुण्डे ॥३८॥

अब सब कुण्डों में योनि लगाने का क्रम कहते हैं। पूर्वादि क्रम से पूर्व, अग्नि, दक्षिण इन तीन कुण्डों में योनि दक्षिण लगावे। उसका

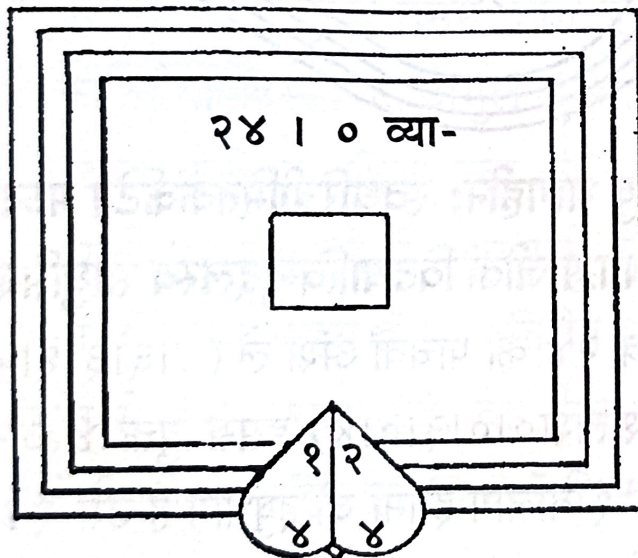
अग्रभाग उत्तर को करे । नैर्ऋत्य, पश्चिम, वायव्य, उत्तर, ईशान इन पांच कुंडों में योनि पश्चिम लगावे । इसका अग्रभाग पूरब को करै । यह सब आठों कुण्ड दिशा विदिशा के हुए और नवां आचार्यकुण्ड पूर्व ईशान के मध्य में जो है उसमें दक्षिण उत्तर को योनि का अग्र करे और त्रिकोण में तथा योनिकुण्ड में योनि नहीं लगावे ॥

द्विघ्नव्यासं तुर्यचिह्नं सपाशं सूत्रं शङ्कौ पश्चिमे पूर्वगेऽपि ।

दत्त्वा कर्षेत्कोणयोः पाशतूर्ये स्यादेवं वा वेदकोणं समानम् ॥३९॥

व्यास १ हाथ उसको दूना करने से २ हाथ होगा । इसी प्रकार से जितना व्यास होय उसका दूना करे । उसमें सूत्र सहित पाश के ४ चिह्न करे, उसके बाद दोनों पाशों को पूर्व पश्चिम की कील में फँसाकर दोनों की चतुर्थांश गांठ को पकड़ कर अग्नि तथा नैर्ऋत्य कोण की तरफ खींचे और वायव्य तथा ईशान कोण की तरफ खींचे तो चतुरस्र कुण्ड बराबर सिद्ध होता है । इसी प्रकार सब कुण्डों के पहले चतुरस्र क्षेत्र बना ले तब उसके ऊपर दूसरा कुण्ड खींचे ॥३९॥

चतुरस्रकुण्डस्वरूपम्

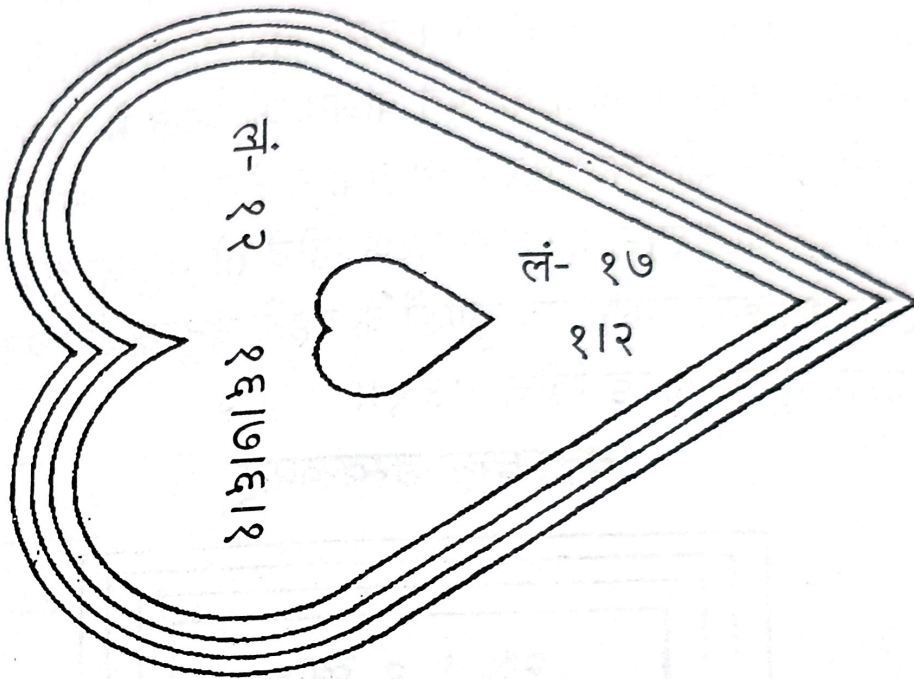


क्षेत्रे जिनांशे पुरतः सरांशान्संवर्ध्य च स्वीयरदांशयुक्तान् ।

कर्णाधिमानेन लिखेन्दुखण्डं प्रत्यङ्कुरोङ्काद्गुणतो भगाभम् ॥४०॥

प्रकृतिक्षेत्र का २४ भाग करे । उसके ५ भाग लेवे वह अपने बत्तीसवाँ हिस्सा से युक्त (बत्तीसवाँ हिस्सा से युक्त करने पर ५ अंगुल १ यव २ यूका हुआ) इतने को प्रकृतिक्षेत्र के मध्य में आगे बढ़ावे और पीछे के दोनों भाग चतुरस्र में चारो कोण से रेखा देकर कर्णाघ्रि (दोनों के मध्य) में परकाल रखकर दो आधावृत्त करे और दोनों पार्श्व से आगे के चिह्न से रेखा देने पर शुद्ध योनिकुण्ड होता है ॥४०॥

योनिकुण्डस्वरूपम्

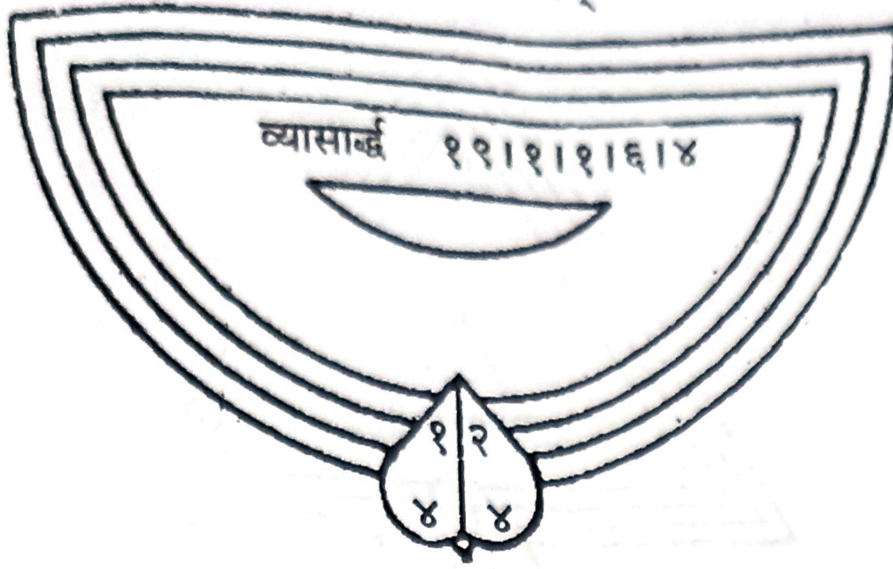


स्वशतांशयुतेषु भागहीनः स्वधरित्रीमितकर्कटेन मध्यात् ।

कृतवृत्तदलेऽग्रतश्च जीवां विदधात्विन्दुदलस्य साधुसिद्ध्यै ॥४१॥

प्रकृतिक्षेत्र २४ का पाचवाँ अंश ले (४।६।३।१।५) वह कैसा हो कि शतांश (शतांश ०।०।३।०।४) इससे युक्त ४ अंगुल ६ यव ६ यूका २ लिक्षा १ बालाग्र इतना जो इषुभाग है उसे २४ अंगुल के क्षेत्र में-से घटावे तो १९ अंगुल १ यव १ यूका ५ लिक्षा ४ बालाग्र इतने से चतुरस्र के मध्य में परकाल रखकर वृत्त का आधा खींचे । वृत्तार्ध के आगे सूत्र देवे तो अर्धचंद्र शुद्ध होता है ॥४१॥

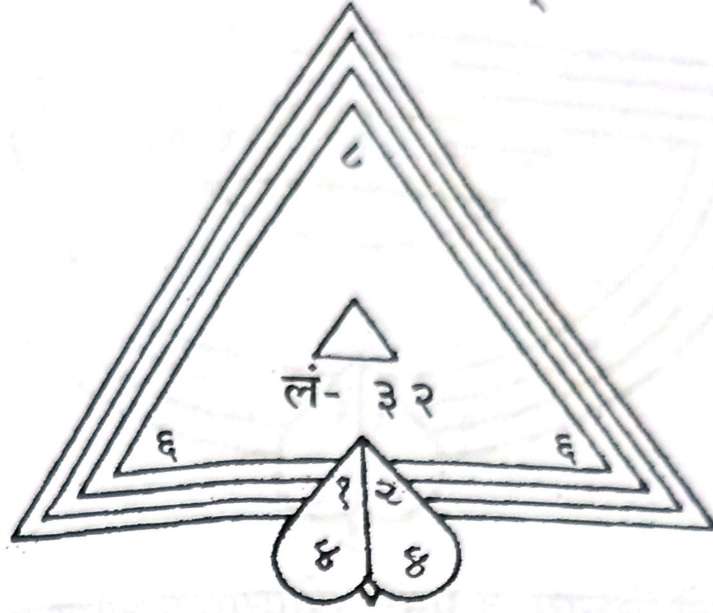
अर्धचन्द्रस्वरूपम्



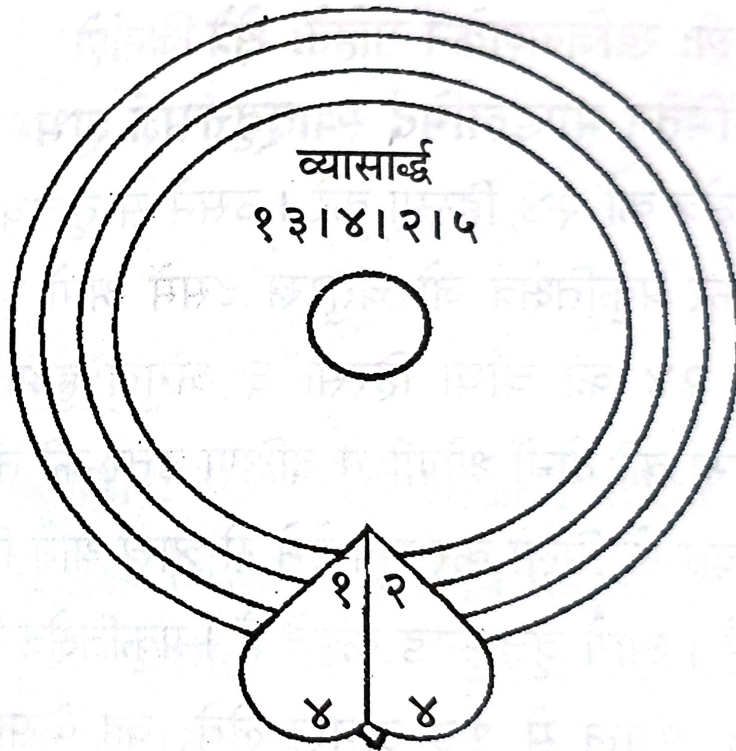
वह्न्यंशं पुरतो निधाय च पुनः श्रोणयोश्चतुर्थांशकं
चिह्नेषु त्रिषु सूत्रदानत इदं स्यात्त्र्यस्रिकष्टोज्झितम् ।
विश्वां १३ शैः खजिनांशकेन सहितैः क्षेत्रे जिनांशे कृते
व्यासार्धेन मितेन मण्डलमिदं स्याद्वृत्तसंज्ञं शुभम् ॥४२॥

प्रकृतिक्षेत्र का २४ हिस्सा करे । उसमें से तृतीयांश (याने ८ अंगुल) लेकर प्रकृतिक्षेत्र जो चतुरस्र उसमें आगे पूर्व की तरफ बढ़ावे और २४ का चौथा हिस्सा ६ अंगुल हुआ, उस छ-छ अंगुल चतुरस्र की दोनों श्रोणी में दक्षिण उत्तर की तरफ बढ़ावे । बाद तीनों चिह्न से मिला कर सूत्र देने से त्र्यस्र याने त्रिकोण कुण्ड सिद्ध होता है । आगे वृत्तकुण्ड कहते हैं । प्रकृतिक्षेत्र को २४ भाग करे उस २४ अंगुल से १३ अंगुल लेवे, वह कैसा १३ अंगुल कि अपने चौबीसवें हिस्से के सहित हो (२४वाँ हिस्सा ४ अंगुल २ यूका ५ लिक्षा २ बालाग्र) तब चतुरस्र के मध्य में परकाल रखकर (१३।४।२ यूका ५ लिक्षा २ बालाग्र इतने के व्यासार्ध से) वृत्त करे तो शुद्धवृत्त कुण्ड होता है ॥४२॥

त्रिकोणकुण्डस्वरूपम्



वृत्तकुण्डस्वरूपम्



भक्ते क्षेत्रे जिनांशैर्धृतिमितलवकैः स्वाक्षिशैलांशयुक्तै-
व्यासार्द्धान्मण्डले तन्मितधृतगुणके कर्कटे चेन्दुदित्तः।
षट्चिह्नेषु प्रदद्याद्रसमितगुणकानेकमेकं तु हित्वा
नाशे संध्यर्तुदोषामपि च वृत्तिकृतेर्नेत्ररम्यं षडस्त्रम् ॥४३॥

अब वायव्य कोण में षट्कोण कुण्ड कहते हैं—प्रकृतिक्षेत्र २४ अंगुल उसमें से १८ अंगुल लेवे उस अठारह अंगुल का ७२ वां हिस्सा युक्त हो तो बहत्तरवां हिस्सा २ यव भया तो १८ अंगुल २ यव के परकाल से वृत्त करना (गोल) उत्तर तरफ से उसी परकाल से वृत्त में ६ चिन्ह करना । एक एक चिन्ह को छोड़ कर तीसरे तीसरे चिन्ह पर सूत्र देने से और सब संधि की रेखा मिटाने से षट्कोण सिद्ध होता है ॥४३॥

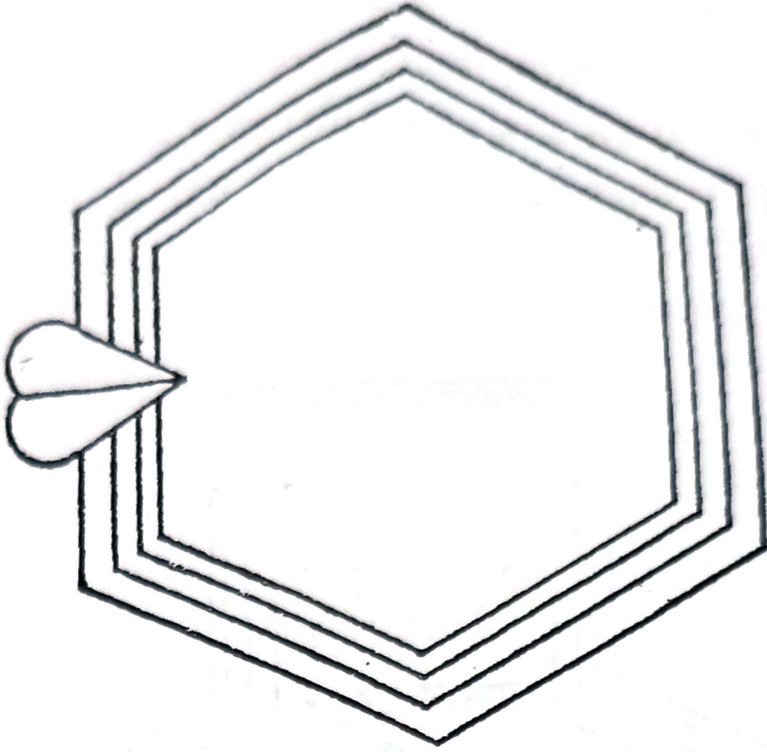
विषमषडस्रकुण्डस्वरूपम्



अथवा जिनभक्तकुण्डमानात्तिथिभागैः स्वखभूपभागहीनैः ।

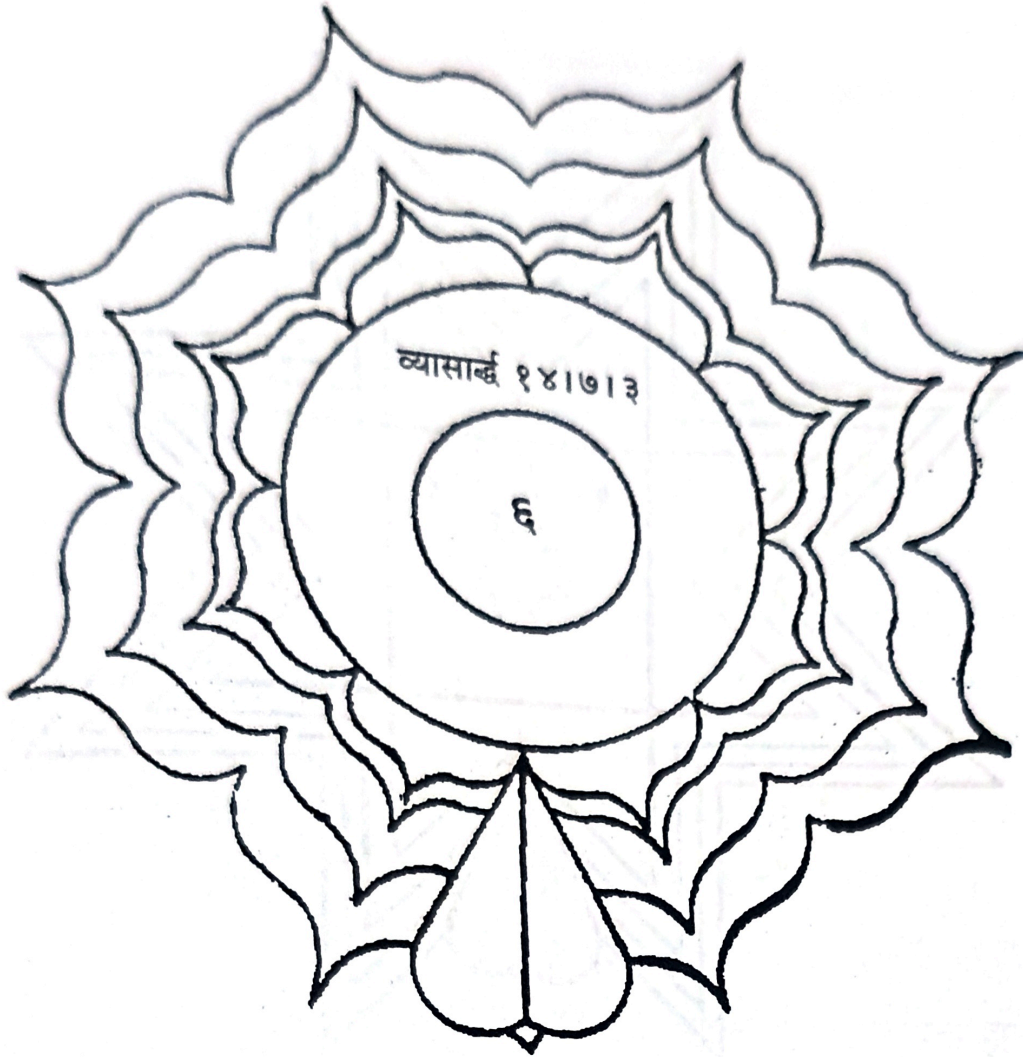
मितकर्कटोद्भवे तु वृत्ते विधुदित्तः समषड्भुजैः षडस्रम् ॥४४॥

अब दूसरा षडस्रकुण्ड समभुजमृदङ्गाकार कहते हैं । प्रकृतिक्षेत्र का २४ भाग करे । उसमें से तिथिभाग १५ जो है वह अपने १६० वें भाग से हीन करे तो हीन करने से १४ अंगुल ७ यव २ यूका परकाल से वृत्त (गोल) करे । उस वृत्त में उत्तर दिशा से उसी परकाल से ६ चिन्ह करे छहों चिन्हों से परस्पर सूत्र देने और संवृत्ति मिटाने से समभुज षडस्रकुण्ड सिद्ध होता है ॥४४॥



अष्टांशाच्च यतश्च वृत्तशरके तत्रादिमं कर्णिका
 युग्मे षोडशकेसराणि चरमे स्वाष्टत्रिभागोनिते ।
 भक्ते षोडशधा शरान्तरधृते स्युः कर्कटेऽष्टौ छदाः
 सर्वो तां खनकर्णिकां त्यज निजायामोच्चकां स्यात्कजम् ॥४५॥

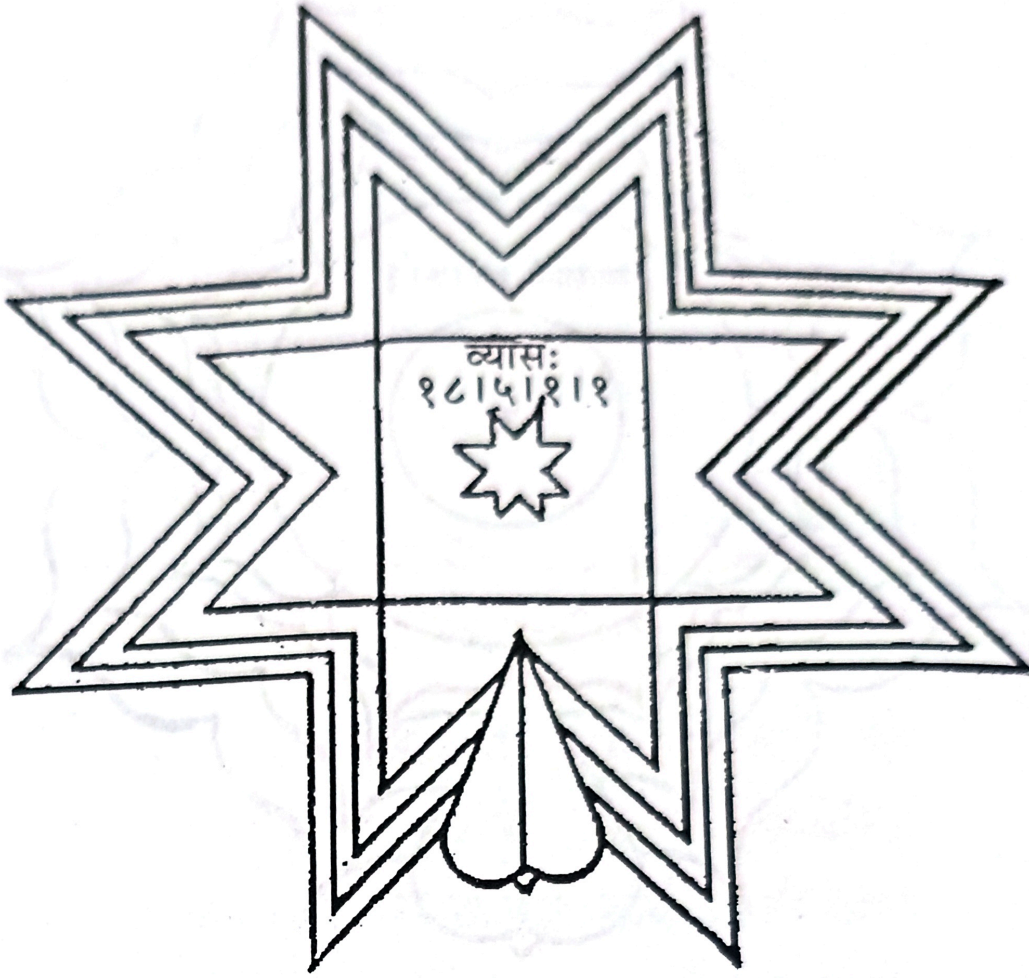
प्रकृतिक्षेत्र २४ के अष्टमांश से एक २ वृत्त में अष्टमांश बढ़ा बढ़ा कर ५ वृत्त करे । परन्तु पाँचवें वृत्त में वह अष्टमांश के व्यासार्ध से २ अंगुल ७ यव २ यूका १ लिक्षा २ बालाग्र से पाँचवाँ वृत्त करे । पहिला वृत्त ३ अंगुल, दूसरा वृत्त ६ अंगुल, तीसरा वृत्त ९ अंगुल, चौथा वृत्त १२ अंगुल, पाँचवाँ वृत्त १४ अंगुल ७ यव २ यूका १ लिक्षा २ बालाग्र के परकाल से करके अन्तिम वृत्त से १६ चिन्ह करे । दिशा विदिशा वो विदिशा दिशा के बीच में पाँचवें चिन्ह पर परकाल रखकर दिशा विदिशा में ८ पत्र करे और पत्र के मध्य तथा केसर को छोड़कर कर्णिका के मध्य में खने तो स्वच्छ पद्मकुण्ड सिद्ध होता है ॥४५॥



क्षेत्रे जिनांशे गजचन्द्रभागैः स्वाश्लिष्टभागेन युतैस्तु वृत्ते ।

विदिग्दिशोरन्तरतोऽष्टसूत्रैस्तृतीययुक्तैरिदमष्टकोणम् ॥४६॥

प्रकृतिक्षेत्र २४ इसमें से १८ हिस्सों को अपने २८वें हिस्से के सहित लेवे तो १८ अंगुल ५ यूका १ यूका १ लि० १ बालाग्र हुआ । इतने के व्यासार्द्ध को परकाल से वृत्त करे और दिशा विदिशा के मध्य में ८ चिन्ह करे । बाद दो-दो चिन्ह के मध्य में छोड़ छोड़कर तीसरे-तीसरे चिन्हों को मिलाकर ८ रेखा देवे । बाद वृत्त एवं संधियों को मिटा दें तो विषम भुज (याने विषम अष्टकोण कुंड) होता है ॥४६॥

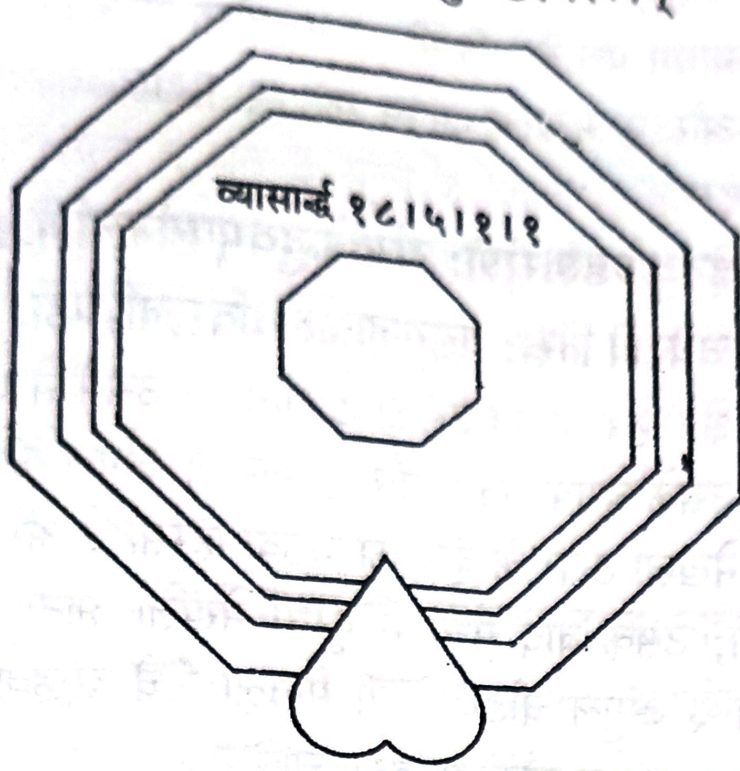


मध्ये गुणे वेदयमैर्विभक्ते शक्रैर्निजर्ष्यब्धिलवेन युक्तैः।

वृत्ते कृते दिग्विदिशोऽन्तराले गजैर्भुजैः स्यादथवाऽष्टकोणम् ॥४७॥

अब दूसरा सम अष्टास्र मृदङ्गाकार कुण्ड कहते हैं। प्रकृतिक्षेत्र २४ अंगुल में-से क्षेत्र १४ अंगुल लिया। वह १४ अंगुल कैसा होय कि अपने ४७वें अंश से युक्त हो तो १४ अंगुल २ यव ३ यूका के व्यासार्द्ध में परकाल से वृत्त करे। उस वृत्त की दिशा विदिशाओं के मध्य में चिन्ह देकर परस्पर चिन्हों को मिलाकर सूत्र देने से सब वृत्त मिलने से मृदङ्गाकार शुद्ध सम अष्टास्र कुण्ड होता है ॥४७॥

समअष्टास्त्रमृदङ्गाकारकुण्डस्वरूपम्



खातं क्षेत्रसमं प्राहुरन्ये तु मेखलां विना ।

कण्ठो जिनांशमानः स्यादर्काश इति चापरे ॥४८॥

सम्पूर्ण कुंडों का खात कुंडमान के बराबर कुण्डाकार बनावे अर्थात् १ हाथ का कुण्ड होय तो लंबाई चौड़ाई और खात सब एक एक हाथ करे (यानी २४ अंगुल चौड़ा २४ अंगुल लंबा २४ अंगुल गहिरा बनावे) किसी आचार्य का मत है कि मेखला को छोड़कर याने १५ अंगुल खात और १ अंगुल मेखला सब मिलाकर २४ अंगुल का खात बनावे और कंठ १ अंगुल चौड़ा रखे । किसी आचार्य का मत है कि कंठ २ अंगुल चौड़ा करना चाहिए ।

अधमा मेखलैका स्यान्मध्यमं मेखलाद्वयम् ।

श्रेष्ठास्त्रिस्तोऽथवा द्वित्रिपञ्चस्वधमतादिकम् ॥४९॥

अब मेखला को लिखते हैं कि खात से बाहर १ अंगुल या २ अंगुल कंठ को छोड़कर अधमादि मेखला बनावे । १ मेखला अधमपक्ष, २ मेखला मध्यमपक्ष, ३ उत्तमपक्ष । दूसरा प्रकार—२ मेखला अधम,

३ मेखला मध्यम, ५ मेखला उत्तम, यह पक्ष सबने कहा है और १ मेखला अधमाधम पक्ष है। किसी का मत ऐसा भी है कि तीन मेखला ब्राह्मण को और २ मेखला क्षत्रिय को, १ मेखला वैश्य को रखना चाहिए ॥४९॥

अष्टधा विहितकुण्डशरांशैः संखनेद्भुवमुपर्यनलांशैः।

मेखला विरचयेदपि तिस्रः षड्गजार्कलवविस्तृतपिण्डाः ॥५०॥

प्रकृति क्षेत्र २४ अंगुल उसको ८ भाग करें उसमें से ५ भाग लेवे १५ अंगुल उसके बराबर खने और ३ भाग ९ अंगुल की ३ मेखला करे। प्रथम मेखला ऊपर के कुंड का छठवाँ हिस्सा ४ अंगुल ऊँची ४ अंगुल चौड़ी, उसके बाद मध्य में दूसरी मेखला आठवाँ हिस्सा ३ अंगुल ऊँचा ३ अंगुल चौड़ा तीसरी मेखला नीचे बारहवाँ हिस्सा २ अंगुल ऊँची २ अंगुल चौड़ी बनवाना चाहिए।

रसांशकादुन्नतविस्तृताश्च तिस्रोऽथवैका युगभागतुल्या।

पञ्चाऽथवा षट्शरवेदरामद्वयं शैस्तताः स्युर्नवभागपिण्डाः ॥५१॥

एक मेखला करने की विधि यह है कि क्षेत्र का चौथा हिस्सा क्षेत्र २४ अंगुल उसका चौथा हिस्सा ६ अंगुल हुआ तो ६ अंगुल ऊँची ६ अंगुल चौड़ी १ मेखला करे। दूसरा प्रकार—समान तीन मेखला का ४ अंगुल ऊँचा ४ अंगुल चौड़ा इसी प्रकार से दूसरी तीसरी मेखला करे तो तीनों मिलाकर १२ अंगुल ऊँची १२ अंगुल चौड़ी मेखला हुई। पहिले के क्रम से यदि पाँच मेखला करनी हो तो पहिली मेखला ६ अंगुल चौड़ी दूसरी मेखला ५ अंगुल चौड़ी तीसरी मेखला ४ अंगुल चौड़ी चौथी मेखला ३ अंगुल चौड़ी पाँचवीं मेखला २ अंगुल चौड़ी अब चौड़ाई २० अंगुल का विस्तार भया और ऊँचाई ९ अंगुल है ॥५१॥

आद्यापरास्तच्छरभागहीना जिनांशकण्ठाद्वहिरेव सर्वाः।

कुण्डानुकारा अपि मेखलाः स्युरर्काङ्गभागोच्च ततस्तु नाभिः ॥५२॥

अब मेखला की ऊँचाई का विभाग कहते हैं । पहिली मेखला से परे नव अंगुल का पंचमांश सब मेखलाओं में घटाकर बनावे १ अंगुल कंठ को छोड़कर सब मेखला बनावे । जिसका क्रम यह है— पंचमांश १ अंगुल ६ यव ३ यूका १ लिक्षा ५ बालाग्र होता है । इतने सब मेखला में घटाने से ९ अंगुल की ऊँचाई होती है । चौड़ाई २ अंगुल के मुकाबिले में और कुण्ड के आकार की मेखला वो नाभि निश्चय करके बनाना और नाभि की ऊँचाई २४ अंगुल १२वाँ हिस्सा २ अंगुल ऊँची और २४ अंगुल का छठवाँ हिस्सा ४ अंगुल चौड़ी बनाना चाहिए ॥५२॥

**कुण्डाकारो नाभिरम्भोजसाम्यो वाब्जेयं नेनांशहानिर्दलाग्रे ।
शेषक्षेत्रे वह्निवृत्तैः समेतैः स्युर्वै कर्णी केसराः पत्रकाणि ॥५३॥**

कुण्ड के आकार की या कमल के आकार की नाभी बनावे । उसका प्रकार यह है कि चतुरस्र नाभि में २ अंगुल ऊँचा ५ अंगुल चौड़ा तीन वृत्त करे ८ पत्र २ अंगुल के विस्तार में उसे बनावे । बाकी मध्य में जितनी जमीन बचे वह कर्णिका और केसर का स्थान याने पद्मकुण्डवत् जाने और पद्मकुण्ड में नाभि नहीं केवल कर्णिकामात्र है । १ हाथ के कुंड में कर्णिका ६ अंगुल ऊँची ६ अंगुल चौड़ी होती है ॥५३॥

**योनिर्व्यासार्द्धदीर्घा विततिगुणलवादायताब्धिद्विभागा
तुङ्गा तावत्समन्तात्परिधिरुपरिगा तावदग्रेण रम्या ।**

निम्नं कुण्डं विशन्ती बलयदलयुगेनान्विताऽधो विशाला

मूलात्सच्छिन्द्रनालान्तरवटरुचिराश्चत्थपत्राकृतिः सा ॥५४॥

अब योनि का प्रकार कहते हैं । योनि व्यास का आधा (व्यास २४ अंगुल इसका आधा १२ अंगुल) लंबी वो ८ अंगुल की चौड़ी १२ अंगुल ऊँची और नीचे से भारी ऊपर १ अंगुल संकलित और पृथिवी के मूल सहित छिद्र के नाल १२ अंगुल ऊँची और आगे को १ अंगुल झुकती हुई भीतर १ अंगुल काण्ठ के बाहर अग्र निकलती हुई और मध्य

में गड़हा १ अंगुल कछुवा की पीठ ऐसा बनावे मट्टी का गोला २ दोनों पुष्ट पर रखे और १ अंगुल चौड़ी १ अंगुल ऊँची उसकी परिधि चारों तरफ रखें। यह अश्वत्थ (पीपर) पत्राकृति योनि होती है, इसे सब कुण्डों के मध्य में लगाना चाहिए ॥

और योनि के अग्र भाग के मध्य में छिद्र कर रखे ॥५४॥

अथार्काङ्गुलपक्षे तु मेखलानां दशाङ्गुलैः।

विस्तृतातिथिभिर्दीर्घाङ्गुलिभिर्योनिरिष्यते ॥५५॥

जब कि १२ अंगुल की तीनों मेखला समान चार चार अंगुल की करनी हो तो योनि १० अंगुल चौड़ी १५ अंगुल लंबी और १५ अंगुल ऊँची बनावें। शेष जो है वह सब पहिले के तरह जानना ॥५५॥

अथवापि मृदा सुवर्णभासा करमानं चतुरङ्गुलोच्चमल्पे।

हवने विदधीत वाङ्गुलोच्चं विबुधः स्थण्डिलमेव वेदकोणम् ॥५६॥

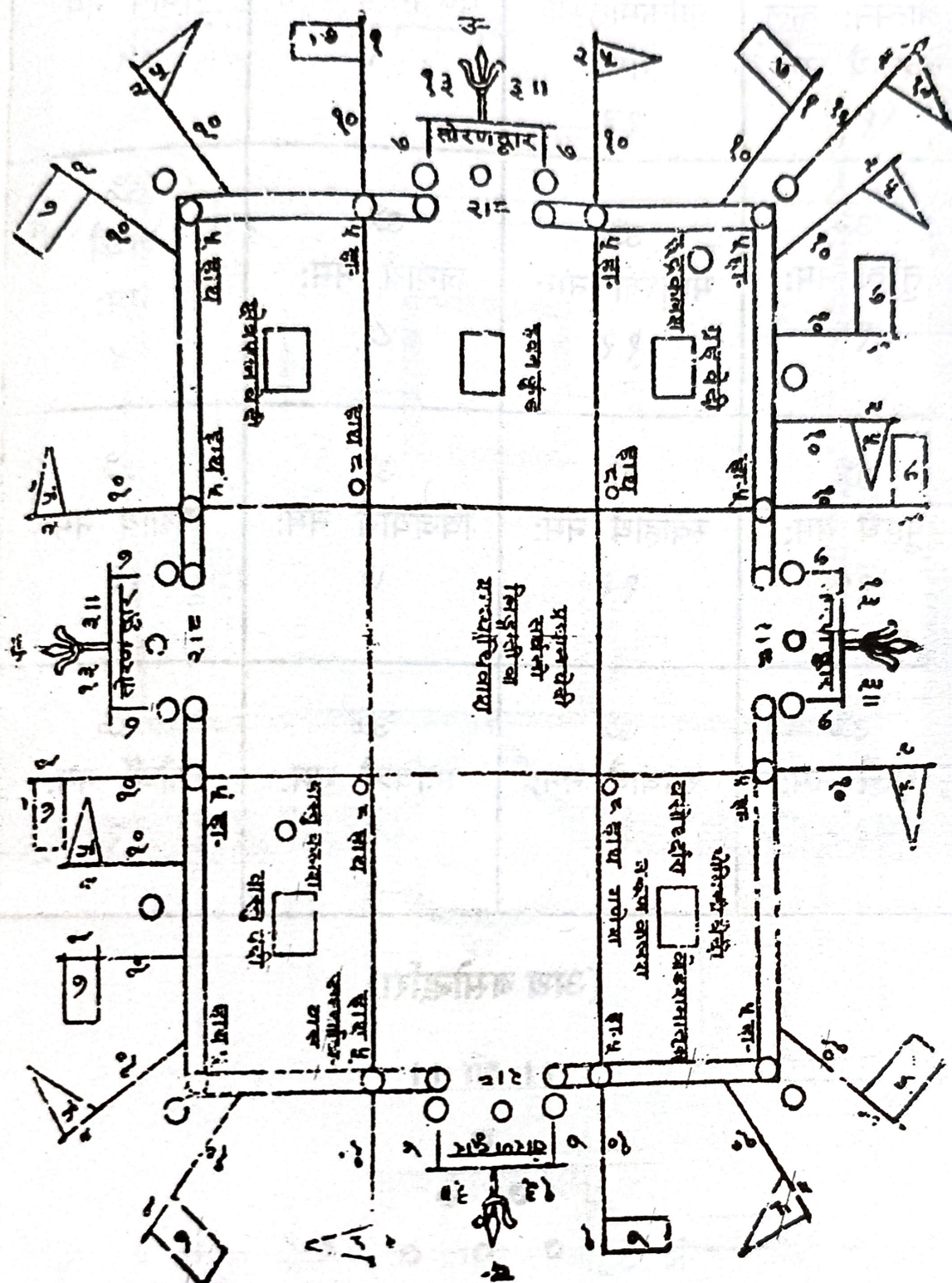
अब स्थण्डिल का प्रकार कहते हैं। सुवर्ण जैसी मृत्तिका लेकर १ हाथ लम्बी, १ हाथ चौड़ी, ४ अंगुल ऊँची अथवा १ अंगुल ऊँची चौकोर वेदी बनावें, थोड़े हवन में और स्थण्डिल में भी योनि मेखला करना, किसी का मत है ॥५६॥

अंगीकार्या मत्कृतिनिर्मलेयं कष्मादेवं पण्डितान् त्राथयेऽहम्।

क्षीरं पेयं नीरमेताद्विहाय को वा विज्ञं हतज्ञार्थं पीता ॥५७॥

इति पं० श्री वायुनंदनमिश्रकृता कुण्डमण्डपसिद्धिः

भाषानुवादसहिता समाप्तः।

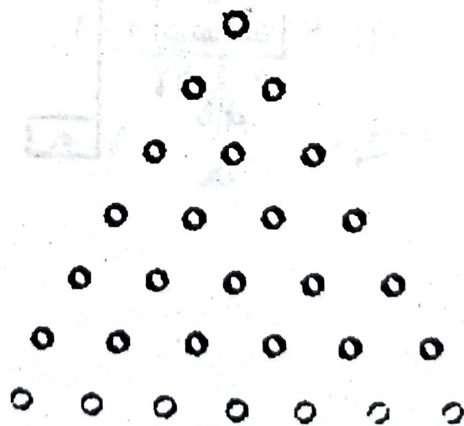


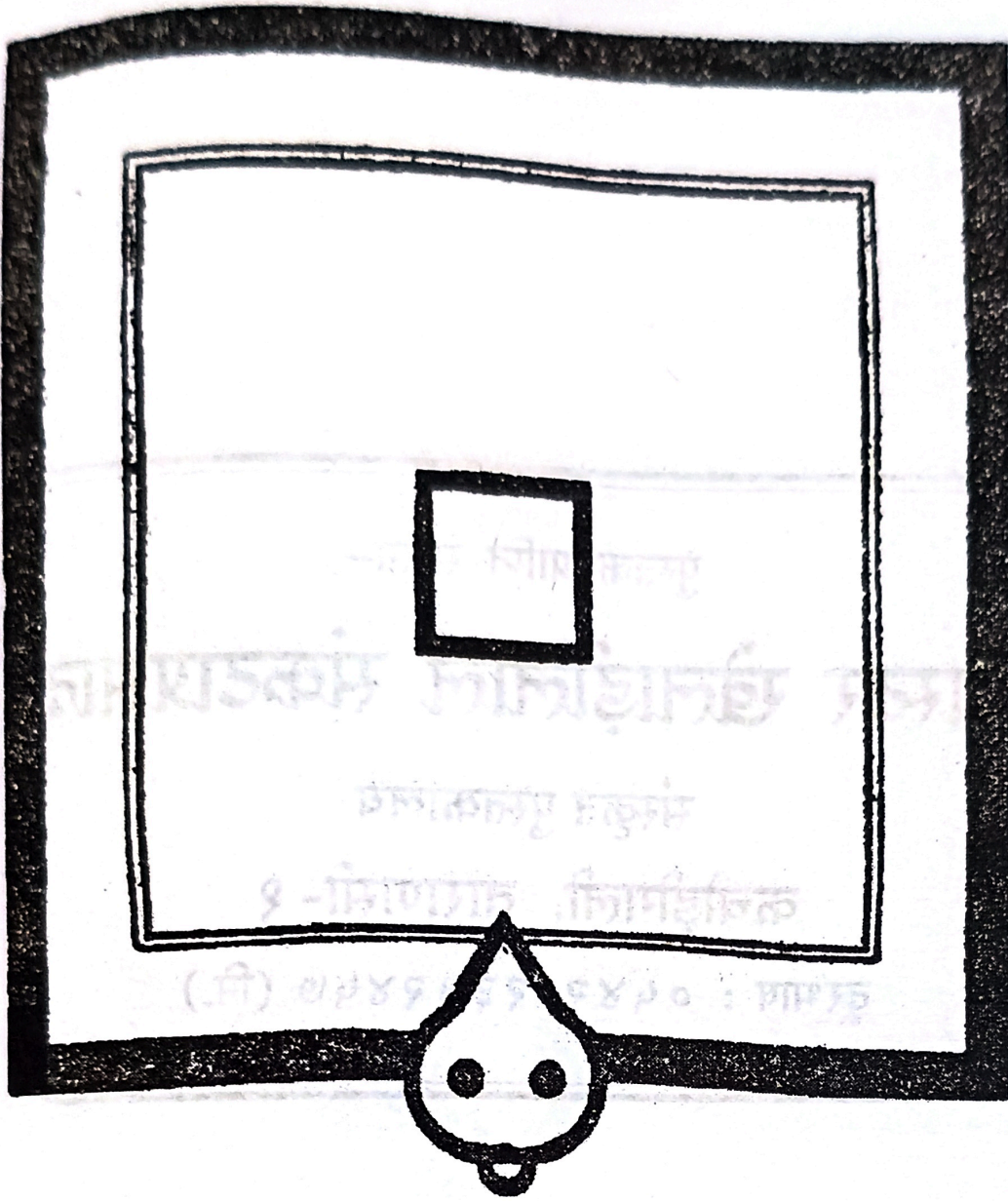
षोडशमातृकाचक्रम्

ॐ आत्मनः कुल देवतायै नमः १७	ॐ लोकमातृभ्यो नमः १३	ॐ देवसेनायै नमः ९	ॐ मेधायै नमः ५
ॐ तुष्ट्यै नमः १६	ॐ मातृभ्यो नमः १२	ॐ जयायै नमः ८	ॐ शच्यै नमः ४
ॐ पुष्ट्यै नमः १५	ॐ स्वाहायै नमः ११	ॐ विजयायै नमः ७	ॐ पद्यायै नमः ३
ॐ धृत्यै नमः १४	ॐ स्वधायै नमः १०	ॐ सावित्र्यै नमः ६	ॐ गौर्यै नमः २

(अथ बसोद्धारा)

॥ श्री ॥





पं.

कुण्डस्वरूपम्

योनि १२ अंगुल ऊँची १२ अंगुल लम्बी ८ अंगुल चौड़ी रक्तवर्ण
 सफेद ऊपर की सीढ़ी ४ ,, चौड़ी वो ४ अंगुल ऊँची १
 लाल उसके नीचे की ३ ,, ,, ३ ,, ,, २
 काली उसके नीचे की २ ,, ,, २ ,, ,, ३

पुस्तक प्राप्ति स्थान-

मास्टर खेलाड़ीलाल संकटाप्रसाद

संस्कृत पुस्तकालय

कचौड़ीगली, वाराणसी-१

दूरभाष : ०५४२-२३३२४५७ (नि.)

कम्प्यूटर कम्पोजिंग-

रस्तोगी कम्प्यूटर, एन. २/९८ क, (खोजवां) सुन्दरपुर, वाराणसी

मो०- ९९३५३९७३३४, ९३९६७४७४४९

स्वप्रकाशित - ग्रन्थरत्नानि

सत्यनारायण व्रत कथा भा. टी. 25/-	प्रेतमंजरी भा. टी. 80/-
वाशिष्ठी-हवन-पद्धति भा. टी. 50/-	श्राद्धविवेक अर्थात् श्राद्धसंग्रह भा.टी. 225/-
विवाह - पद्धति भा. टी. 40/-	वास्तुशान्ति-पद्धति 40/-
उपनयन-पद्धति भा. टी. 40/-	वनदुर्गा - पटल 25/-
विष्णुयाग-पद्धति भा. टी. 100/-	गृहरत्नभूषण भा.टी. 25/-
रुद्रयाग-पद्धति 100/-	गृह निर्माण-व्यवस्था भा. टी. 25/-
शिलान्यासपद्धति भा. टी. 25/-	ललितासहस्रनाम-स्रोतम् 30/-
वास्तुशान्ति-पद्धति भा. टी. 50/-	श्री सूक्तम् भा.टी. 30/-
कुण्डमण्डपसिद्धि भा. टी. 25/-	सरयूपारीण-ब्राह्मण-वंशावली 50/-
प्रतीष्ठामहोदधी 250/-	केरल-प्रश्न-संग्रह भा.टी. 25/-
नारायण-बलिप्रयोग 50/-	कूपोत्सर्ग-पद्धति 30/-
श्री साई बाबा कथा नेट 3/-	कनकधारा-स्तोत्र 25/-
मूलशान्ति पद्धति 50/-	महाविद्या-स्तोत्र 25/-
काशी गौरव 120/-	कार्तविर्य-स्तोत्र 40/-
गरुण पुराण (प्रेत कल्प) 80/-	ज्योतिष विषय
ग्रहशान्ति-प्रयोग 180/-	बृहत्पाराशर होरा शास्त्र 250/-
रुद्राष्टध्यायी-मूल 40/-	लघु पाराशरी भा. टी. 50/-
त्रिपिण्डी-श्राद्ध-पद्धति 50/-	मानसागरी भा. टी. 200/-
वास्तु मुक्तावली 75/-	जन्मपत्र-व्यवस्था भा. टी. 25/-
वास्तु राजवल्लभ 100/-	स्त्रीजातक भा. टी. 40/-
काशी महिमा प्रकाश 60/-	वास्तुसारणी भा. टी. 75/-

पुस्तक प्राप्ति स्थान

मास्टरखेलाड़ीलाल संकठाप्रसाद

संस्कृत पुस्तकालय, कचौड़ीगली, वाराणसी-1

मो. : 7839348027